जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख
धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण
और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

(पांडुशिला ,सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य,जाप माला ,मंगल कलश, पूजा बर्तन ,चंदोवा,तोरण ,झारी ,

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)

नोट:-हमारे यहाँ घरो में उपयोग हेतु ,साधुओ के उपयोग हेतु ,
अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर
उपलब्ध कराया जाता है

SOURABH KUMAR JAIN
9993602663
77229 83010
SOURABHJN1989@GMAIL.COM

3.1 आचार्य विद्यासागर का व्यक्तित्व :

भारत एक संस्कृति प्रधान देश है। युगों–युगों से भारतीय संस्कृति विश्व में अपनी अमिट छाप बनाए हुए है। समस्त सृष्टि का जगद्गुरु यह भारत वर्ष ऋषि–महर्षियों की पुण्य व कर्म भूमि रहा। इन ऋषि–महर्षियों ने भारतीय संस्कृति एवं आचरणात्मक नैतिक मूल्यों की अजस्र धारा अनवरत प्रवाहित की जिसमें, अवगाहन कर अनेक जीवों ने अपने जीवन को सफल बनाया। जब पश्चिमी देश अपनी प्रारंभिक स्थिति में थे, तब भारत अपने आत्मबल और आध्यात्मिक शक्तियों के द्वारा उनका मार्गदर्शन करता था। बड़े–बड़े महापुरुषों को जन्म देने वाली भारत माता सदैव से पूज्यनीय व वंदनीय रही हैं। संपूर्ण विश्व में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों में विदेशी ज्ञान पिपासु अध्ययन करने आया करते थे। ईसा मसीह ने स्वयं अपनी शिक्षा की विद्यापीठ भारत को ही बनाया था। कथनी–करनी में साम्य रखने वाले भारतीय दार्शनिकों एवं साधकों ने इस विश्व को अपने ज्ञान रूपी आलोक से आलोकित किया है। विकृति से परे सुकृति का जीवन प्रदान करने वाली वीर प्रसूति भारत माता ने विवेकानंद, दयानंद, तिलक और गाँधी जैसे युग दृष्टाओं, वाल्मीकि, कालिदास, कबीरदास, नानक, जैसे संत कवियों, आचार्य कुन्द–कुन्द, चाणक्य, भद्रबाहु जैसे महामना पुरुषों, भगवान महावीर, बुद्ध, राम जैसे आत्म जेताओं व साधकों को जन्म देती रही है।

आधुनिक युग में आचार्य विद्यासागर इसी परम्परा के एक जीवन्त प्रतीक श्रुत और शील से सपन्न हैं। उनमें ज्ञान की गरिमा है किन्तु, उसका अंहकार नहीं हैं। आगम साहित्य के गंभीर ज्ञाता एवं तलस्पर्शी विद्वान् होने के बाद जिज्ञासा वृत्ति सदैव प्रवाहमान रहती है। ज्ञान के आगर होते हुए भी वे ज्ञान के जिज्ञासु हैं। आप जगत के प्रपंचों से विरत, निस्पृह, निराकांक्षी, आत्मद्रष्टा तथा ध्यान योगी हैं। वाणी में ऋजुता, व्यक्तित्व में समता, जीने में सादगी की त्रिवेणी हैं। आपके व्यक्तित्व में विश्व बंधुत्व तथा मानवता की गंध है। आपकी सरलता, सहजता तथा स्नेह–सौहार्द से आह्लादित करने वाली मुखमुद्रा किसी भी दर्शक को अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

आचार्य विद्यासागर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व – समय रेखा

	1946	विद्यासागर का जन्म सदलगा, बेलगाँव, कर्नाटक
	1968	मुनि दीक्षा, अजमेर, राज
	1972	आचार्य पद नसीराबाद, राज
	1975	प्रथम दीक्षा प्रदान की सोनागिर, म. प्र.
ब्राह्मी विद्याश्रम सागर म. प्र.	1984	ब्राह्मी विद्याश्रम जबलपुर, म. प्र.
विद्यासागर शोध संस्थान जबलपुर म. प्र.	1984	भारतीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय शिक्षण संस्थान जबलपुर म. प्र.
	1993	भाग्योदय तीर्थ चिकित्सा केन्द्र सागर म. प्र.
	1998	प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर म. प्र.
	2002	सिद्धोदय तीर्थ नेमावर, देवास म. प्र.
	2003	सर्वोदय तीर्थ, अमरकंटक,म. प्र.
	2004	दयोदय तीर्थ, जबलपुर, म. प्र.
	2006	प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ, जबलपुर, म. प्र.
	2007	फार्मेसी कालेज सागर म. प्र.
दयोदय जहाज, गंजबासौदा, म. प्र.	2008	नर्सिग कालेज सागर म. प्र.
	2010	शांति दुग्ध–धारा बीनाबारा, देवरी, सागर म. प्र.
	2011	पूरी–मैत्री जबलपुर म. प्र.
प्रतिभा प्रतीक्षा, बालिका छात्रावास, इंदौर, म. प्र.	2013	प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ, ड़ोंगरगढ़, छत्तीसगढ
	2013	प्रतिभा चयन, बालक छात्रावास, इंदौर, म. प्र.

3.1.1 आचार्य विद्यासागर जी का अनुवांशिक परिचयः

व्यक्तित्व व्यक्ति का सर्वस्व है, गुणी व्यक्तित्व की गणना में जिस नर पुंगव का नाम अंगुलियों पर अंकित होता है उसी मानव भूषण के जन्म की सार्थकता है। लोक में मानव जन्म की उपलब्धि दुर्लभ है, क्योंकि मानवेत्तर योनियों में उन अपरिमेय ऊर्ध्वगामिनी संम्भावनाओं का द्वार अनावृत नहीं होता जो इस योनि में होता है, पर यह सम्भावना तभी उपलब्धि बनती है, जब विद्या धार्यमाण होती है, पता नहीं किन अज्ञात कारणों से माता–पिता ने वन्द्यपाद शिशु का नामकरण 'विद्याधर' किया, वह नाम तप, ध्यान और शास्त्रनिष्ठा पूर्वक अर्जित विद्या से अन्वर्थ बन गया।

शिवपथ के सौम्य पथिक, संयम राह के अविरल राही, नर जन्म को धन्य करने वाले ऐसे भविष्णु आचार्य का धराधाम पर अवतरण कर्नाटक प्रांत के बेलगाँव जिले के सदलगा ग्राम के 'चिक्कोड़ी' में विक्रम संवत् 2003 की शरद पूर्णिमा, 10 अक्टूबर 1946, बृहस्पतिवार को लगभग अर्धरात्रि में हुआ। दिशाएँ अनेक हैं पर वास्तविक और महनीय दिशा तो वही है प्राची, जिसके गर्भ से सूर्योदय होता है श्रीमति 'श्रीमंती अष्टगे' ऐसे ही प्राची दिशा थीं जो सदलगा निवासी सुश्रावक 'श्री मल्लपा पारसप्पाजी अष्टगे' की धर्म पत्नी थीं।

3.1.2 पारिवारिक परिवेश व संस्कार

पारिवारिक, सारस्वत तथा धार्मिक परिवेश अनुवंशतः प्राप्त संस्कार परिवेश की अनुकूलता से विकसित होते हैं। जो उनके विकास में सहायक होते हैं। महापुरुषों के गर्भस्थ होने पर माता–पिता को मंगलसूचक स्वप्नावस्था में कुछ घटनाएँ घटित होती हैं। इनके साथ भी कुछ ऐसा घटित हुआ। माता के स्वप्न में चक्र का आकर रुकना और दो ऋद्धिधारी मुनियों को आहार देना भावी शुभ घटना के सूचक थे। उसी रात पिता को भी स्वप्न आया कि वे खेत में खड़े हैं, जहाँ दहाड़ता हुआ एक सिंह आया और उन्हें निगल गया। इन स्वप्नों के पश्चात् श्रीमंती जी एक दिव्य आनंद से भर गईं उनके मन में एक अलौकिक शांति उतरती चली गई और धर्मवृत्ति वृद्धिगत होने लगी। निश्चित ही यह वंश आध्यात्मिक संस्कारों से मण्डित रहा। फलतः वे संस्कार और

प्रगुणित होकर विद्याधर की चेतना में संक्रान्त हो गये। यद्यपि विद्याधर पूर्वभव से ही त्याग के संस्कार लेकर आये थे, पर इन संस्कारों को गति माता–पिता के धार्मिक आचरण से मिली। श्रीमती काशीबाई और पारसप्पाजी अष्टगे के पुत्र श्री मल्लप्पा जी अष्टगे धार्मिक वृत्ति के इंसान थे। वे एक सफल कृषक के साथ–साथ साहूकार भी थे। यह परिवार अपने आचरण में नैतिकता, व्रत निष्ठा का चेतना से पालन करता था। माता–पिता दोनों ही धर्मपरायण, अल्पपरिग्रही, परार्थ सेवाभावी तथा परमार्थी स्वभाव के व्यक्ति थे। घर के प्रमुख की इस सद्वृत्ति की सुगंध पूरे पारिवारिक परिवेश में व्याप्त थी। सदलगा से 12 किलो मीटर दूर अक्किवाट ग्राम है, जहाँ भट्टारक विद्यासागर जी का समाधि स्थल है। धार्मिक वृत्ति के कारण अष्टगे दंपत्ति वहाँ दर्शनार्थ जाया करते थे। उनके प्रति श्रद्धा होने के कारण माता–पिता ने आपका नाम विद्याधर रखा। विद्याधर के अतिरिक्त आपके पीलू, गनी, तोता आदि नाम भी थे।

धर्मनिष्ठ इस दंपति से दस संताने उत्पन्न हुई, चार संतानें असमय में ही काल कवलित हो गईं। चार पुत्र और दो पुत्रियाँ शेष रहे। सबसे बड़े पुत्र महावीर प्रसाद जिनका जन्म सन् 1943 में हुआ जो सदलगा के निकटवर्ती समनेवाड़ी ग्राम में पारिवारिक विरासत की रक्षा करते हुए राम बिन भरतवत् अपना कुलोचित जीवनयापन कर रहे हैं। विद्याधर उन्हीं के अनुजन्मा हैं। आप माता–पिता की द्वितीय संतान होते हुए भी अद्वितीय है। इनकी दो अनुजाएँ शांता और स्वर्णा हैं। इन अनुजाओं के अनन्तर दो भ्राता अनंतनाथ व शांतिनाथ है। बड़े भाई महावीर को छोड़कर माता–पिता और अनुज–अनुजाएँ विधिवत जैन साधना की परमार्थ धारा में उतरते गये। बीसवी शताब्दी में आचार्य विद्यासागर के परिवार ने हजारों वर्ष के पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की है। हजारों वर्ष पूर्व जम्बूस्वामी के परिवार में यह प्रवृत्ति साकार हुई थी। उसी परंपरा को मल्लप्पा जी अष्टगे के परिवार ने निभाया। सचमुच धन्य है वह परिवार, जिसके सभी सात सदस्य सात तत्वों का चिंतन करते हुए मुक्ति पथ पर निकल पड़े। स्तुत्य है वह कोख जिसने विद्याधर सा सूर्य जन्मा, जिसके दिव्य प्रकाश से आज यह सारा विश्व आलोकित है।

3.1.3 बाल्यकाल

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की सूक्ति आप पर पूर्ण रूप से लागू होती है। आपकी संपूर्ण बाल्यावस्था मन भावन व विस्मित करने वाली घटनाओं से भरी है। अपनी मनोहारी व आकर्षक क्रियाओं के कारण पूरे ग्राम के चहेते रहे। माता–पिता तीर्थाटन के निमित्त प्रायः आते–जाते थे, एक बार शिशु विद्याधर जो केवल डेढ़ वर्ष का था, साथ गया। पूजा काल में असावधानतावश पीलू सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ नीचे चला गया, माता–पिता चिंतित हुए पर आप ग्यारहवीं सीढ़ी पर पूर्ण निश्चिन्त सकुशल मिले। निश्चिन्त ही इस घटना से शिशु का स्वच्छ मानस संस्कारित और रंजित हुआ होगा। बालक में बचपन से ही तितिक्षा और वेदना को सह सकने की क्षमता विभिन्न संदर्भों में बढने लगी, कभी बिच्छू का डंक बर्दाश्त करना पड़ा तो कभी अन्य प्रतिकूल स्थितियों का दबाव।

3.1.4 सारस्वत परिवेश

पाँच वर्ष की अवस्था होने पर उन्हें पारिवारिक परिवेश के अतिरिक्त सारस्वत संस्थानों का परिवेश मिला। वहाँ पूर्व संस्कारवश ज्ञान संक्रान्ति तेजी से होती गयी। सहपाठियों से सौहार्द्र और सौमनस्य तथा गुरुजनों के प्रति श्रद्धा बराबर एक रस बनी रही। इसी क्रम में सारस्वत संस्थानों से हटकर आचार्यों का उपदेश और सान्निध्य मिलता रहा। आचार्य श्री शांति सागर जी के प्रवचन–श्रवण ने विद्याधर को धर्मोन्मुख कर दिया। 'भौतिक सुख नश्वर है' की पंक्ति नौ वर्षीय बालक के हृदय में वैराग्य का बीज बो गयी। आचार्य देशभूषण जी के सान्निध्य बारह वर्ष की अवस्था मूँजीबंधन संस्कार हुआ।

विद्याधर की रुचि और प्रतिभा विविधायामी थी, खेलकूद, शतरंज, चित्र–निर्माण आदि में अवस्थानुरूप अच्छी गति थी। अपनी तूलिका से वे देश भक्त नेताओं के चित्र अंकित किया करते थे। हिंसा और आतंकवाद के कट्टर विरोधी देशभूमि से प्रेम करने वाला बालक नेहरू व विनोबा भावे से प्रभावित था। यह आपकी राष्ट्रभक्ति ही रही जब निप्पानी में विनोबा भावे और सांगली में नेहरू जी आए थे तो आप उनको देखने व उनके भाषण सुनने गए। भारतीय संस्कृति के प्रति आपको बड़ा गौरव था। महात्मा गाँधी के प्रति आपके मन में विशेष आदर था।

दक्षिण में एक खेल प्रसिद्ध है – सूरपाल जिसमें वृक्षों पर चढ़ना, पहाड़ की चोटियों पर पहुँचना, अंधेरी गुफा में प्रवेश करना होता है। आप खेल–खेल में जब गुफा में प्रवेश करते तो ध्यान साधना में लीन हो जाते, फिर कोई भी खिलाड़ी उन तक नहीं पहुँच पाता। बावड़ी में नहाने जाते थे तो वहाँ भी तैरने के बहाने आसन लगाकर मग्न हो जाते। परिवारजन आपको खोजते–खोजते परेशान होते। कंचा खेलते समय कंचों की 9 गोटी को एक के ऊपर एक रेत के माध्यम से जमा लेते थे। जैनागम में आचार्य भद्रबाहु स्वामी की कथा आती है उन्होंने एक के ऊपर 14 कंचे जमाए थे। उनकी इस निपुणता को देखकर निमित्त ज्ञानी ने यह अनुमान लगाया था कि ये 14 पूर्व के पाठी बनेंगे और हुआ भी। वे द्रव्यश्रुत केवली बने। आपके 9 कंचे जमाने से वर्तमान में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आप आगामी काल में 9 प्रकार के बह्मचर्य की गुप्तियों को पालकर 9 वें गुणस्थान को पार कर केवल ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

3.1.5 करुण ह्रदय

नवनीत से कोमल विद्या का दिल किसी को कष्ट में नहीं देख सकता था। स्वयं को कष्ट देकर दूसरों के दुःखों को दूर करने की भावना आप में बलवती थी। आपके करुण ह्रदय में सभी जीवों के प्रति प्रेम और दया का भाव नदी के पूर की तरह समाहित था। खेतों में औषधियाँ या रसायन डाले जाने से आपका दिल इतना दुखता था मानो वो औषधियों खेतों में न डाल कर आपकी नग्न पीठ पर ही डाल दी गयी हों। प्रसिद्ध है कि नौकर द्वारा बैल को पीटते देख स्वयं को उसके स्थान पर आप ने अपने को लगा दिया था। सेवा, आदर, विनम्रता, श्रम, लगन और निष्कपटता आपके सहज स्वभाव की विशेषता है। सबसे मैत्री का भाव, स्वतंत्रता और सादा जीवन जीने के भाव पल–प्रतिपल दृढ़ होते गये। झगड़ा तो कभी किसी से हुआ ही नहीं पर झगड़ने वालों को सुलझाया जरूर। इन सब के साथ उनकी धार्मिक और आध्यात्मिक वृत्ति उत्कर्ष की ओर बढ़ती देख माता–पिता को यह चिंता सताने लगी कि लड़का कहीं हाथ से न निकल जाए। सोलह वर्ष की अवस्था में तो मंदिर जाने के साथ–साथ शास्त्र स्वाध्याय और प्रवचन का क्रम भी गति पकड़ने लगा।

3.1.6 जैन प्रस्थान का धार्मिक परिवेश

युवावस्था का आकर्षण कब पीछे छूट गया, कोई नहीं जान पाया। नेत्र शांत गंभीर और व्यवहार मर्यादित हो गया, परन्तु जिज्ञासाएँ विद्याधर को चैन न लेने देती थीं। कोई अपूर्व आकर्षण विद्याधर को खींचता, पर आप स्वयं नहीं जानते थे कि यह अपूर्व आकर्षण क्या है ? सब कुछ करते हुए भी आपको हृदय में कुछ खालीपन महसूस होता। उस खालीपन को भरने की कोशिश में सत्संगति में भटकते, पर कही भी तृप्ति न मिलती। पारिवारिक, सारस्वत संस्थानों के परिवेश तथा मुनि महाराजों के प्रति गहरा लगाव उनके वैराग्यभाव को तीव्र कर रहा था। अब उनकी चेतना में किसी ऐसे संघ की खोज की अभीप्सा जगी, जो सर्वथा दुर्निवार थी। और एक दिन सन् 1966, आषाढ़ का महीना था, कुछ अपूर्व की अभीप्सा में गौतम बुद्ध की तरह बिना किसी को कुछ कहे घर से अभिनिष्क्रमण कर गए। सिवा उनके मित्र मारुति के कोई नहीं जानता था कि वह गंभीर व शांत 20 वर्षीय युवा किस दिशा में गया है। लोकोत्तर का आकर्षण ऐसा ही अनंत होता है। देशकाल की सीमाएं उसे न कभी बांध पायी हैं न हीं बांध पाएंगी!

इस अभीप्सा से माता–पिता की अनुमति के बिना 20 वर्ष की यौवनावस्था में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के अडिग संकल्पवश वे जयपुर आचार्य श्री देशभूषण जी के पास गये। उनकी वैराग्यवृत्ति को हवा श्री गोपालदास बरैया द्वारा प्रणीत 'जैन सिंद्धात प्रवेशिका' के कण्ठस्थीकरण से मिली। श्री विद्याधर में गुरुभक्ति अद्‌भुत थी। प्रत्येक स्थिति में मुनिवरों की सेवा बड़े मनोयोग से करते थे। इन सब सोपानों पर चढ़ते–चढ़ते अन्ततः उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत मिल ही गया। परिवार से निकल जाने का क्लेश परिजन को था ही, पर वह इनके अड़िग संकल्प के आड़े नहीं आ सका। विद्याधर अब इक्कीसवें वर्ष में प्रविष्ट हो चुके थे। कुछ अपूर्व आकर्षण इन्हें अभी भी खींच रहा था। आपको कुछ गहरा और गहरा, भीतर का खूब भीतर का, जो कि तृप्ति से भर जाए, आनंद में डूब जाए, वह चाहिए था। यद्यपि आप सप्तम् प्रतिमा से अलंकृत हो चुके थे, पर मन में कुछ और की खोज जारी थी।

ज्ञान की तीव्र प्यास कुछ अपूर्व की प्रबल अभीप्सा ने स्तवननिधि से विद्याधर बम्बई होते हुये ढाई दिन के निर्जल उपवास में अजमेर पहुँचे। श्री कजौड़ीमल के साथ मदनगंज–किशनगढ़ में विराजमान मुनिवर श्री ज्ञान सागर जी के पास गये जो वास्तव में ज्ञान के अगाध सागर, प्रकांड विद्वान, अध्यात्मवेत्ता, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के श्रेष्ठ जानकर, संस्कृत के अनेक महाकाव्यों के रचयिता और एक पहुँचे हुए साधक थे। ब्रह्मचारी विद्याधर ने उन्हें देखा तो देखते ही रह गए। उन्हें लगा मानो उनका इनसे पूर्वभव का कोई संबंध हो। हृदय कहने लगा जिस अपूर्व की उन्हें चाह थी वह अपूर्व उन्हें यहाँ मिल जाएगा। शायद इन्हीं यतिराज का आकर्षण उन्हें खींच रहा था। आँखें अश्रु गंगा बन गई। ज्ञान गुरु की नजरें भी आंगतुक को परख रही थी। उन्हें लगा कि शायद उनके इंतजार की घड़ियां समाप्त हो गयी। योग्य शिष्य स्वतः चलकर उनके पास आ गया है। जौहरी को हीरा और हीरे को जौहरी मिल गया। दोनों को अपनी–अपनी निधियाँ मिल गयीं। मानो दोनों की ही खोज आज पूर्ण हो गई हो। नाम, पता और उद्देश्य पूछने के बाद ज्ञानसागर जी ने परीक्षा लेने के निमित्त से पूछा ''विद्याधर नाम है तो कहीं ऐसा तो नहीं विद्या लेकर विद्याधरों की तरह उड़ जाओ ?' फिर मैं परिश्रम क्यों करूँ ? तड़प उठे विद्याधर बोले–**''मैं उड़ने नहीं, आपके चरणों में रमने आया हूँ। यदि भरोसा नही तो मैं आज से.....इसी वक्त से आजीवन वाहन का त्याग करता हूँ, जितना जो चलूंगा नग्न पाद आपके पीछे–पीछे ही चलूंगा। आज से आप मेरे सर्वस्व..।''** कहते हुए विद्याधर ने टेक दिया गुरु चरणों में अपना शीश, बह उठीं आँखें, अभिसिक्त होने लगे गुरु पग। **''हे गुरुदेव मुझे अपनी शरण में ले लो।'' बस इतना ही कहकर लिपटे रह गए गुरु चरणों से...। गुरु की तनिक सी बात पर कि 'शिष्य बनकर उड़ तो नहीं जाओगे'**[1] इस पर श्री विद्याधर ने वाहन का त्यागकर 'ईर्या चर्या' ग्रहण करने की बात की उस से गुरुदेव विस्मयान्वित हो उठे। इससे बड़ी त्याग भावना गुरु को दिये वचन में और क्या हो सकती है ?

3.1.7 कृपा समर्पण कथा

यही से शिष्य समर्पण और गुरु–कृपा की कहानी शुरू होती है। गुरु को अपना उत्तराधिकारी प्राप्त हो चुका था। अतः गुरुदेव देते गये, शिष्य लेता गया और वे पूर्ण रूप से शास्त्राभ्यास और गुरु सेवा में डूबते गये। मूलतः कन्नड़ भाषाभाषी एवं नवमीं

कक्षा तक विद्याध्ययन करने वाले विद्याधर के संस्कृत और हिन्दी भाषा के ज्ञान की कमी को पंड़ित महेन्द्र कुमार जी ने दूर किया, साथ ही व्याकरण, छंद, नीति ग्रंथों का अध्ययन कराया। विद्या का ज्ञान के प्रति असीम समर्पण देखकर ज्ञान गुरु आपको पाँच–छः घंटे नियमित ज्ञानाभ्यास कराते। आपकी निष्ठा, भक्ति, समर्पण, लगन, उत्साह से प्रभावित हो आचार्य प्रवर अपने अंतस का संपूर्ण अध्यात्म, साहित्य, तप, ज्ञान और वह सब जो कुछ उनके अंदर था वह सब विद्याधर की अन्तरात्मा में प्रवाहित किया। कुशल दाता को कुशल पात्र मिल गया था। ये अद्वितीय संगम था गुरु शिष्य का।

विद्याधर की यात्रा बिन्दु से सागर की ओर और ज्ञान सागर जी का मन समुद्र से बिन्दु की ओर हो पड़ा। बिन्दु, सिन्धु में समाहित होना चाहता था, सिन्धु को अपने में समेट लेना चाहता था। अजमेर की धरती पर गुरु शिष्य की सात्विक परम्परा जन्म लेने को बैचेन थी। लग रहा था मानो आकाश से ज्ञानामृत बूंद–बूंद बरस जाने आकुल हो। राजस्थान की भूमि में उन दिनों त्याग बरस रहा था। वहॉ का हर प्राणी त्याग की परिभाषा समझ विद्याधर को गहराई से जानने लगे थे। ज्ञानीजन आपस में चर्चा करते रहते एक कहता तप–सेवा–निष्ठा और ज्ञान को एक मूर्त रूप देखना याने 'फोर इन वन' तो देखो विद्याधर को। कोई कहता यौवन को पराजित करने वाले बाल ब्रह्मचारी को देखना हो तो देखो विद्याधर को '''' ।[2]

शिष्य हृदय मात्र गुरु चरणों से ही नहीं, गुरु हृदय से भी जुड़ गया। गुरु के बिन कहे, गुरु के हर भाव जानने, समझने व पूर्ण करने लगे। देखने–समझने वाले बतलाते कि गुरु भक्ति की ऐसी मिसाल कहीं नहीं देखी। उनका यह वैराग्य बाहर से आरोपित न होकर भीतर से ही उद्भूत था। उपसर्ग, परिषह को हँसकर सहने वाले युवा ब्रह्मचारी विद्याधर जी ने ज्ञानपुंज, सेवापुंज और तपस्यापुंज बनकर जन–जन के हृदय मे अपना स्थान बना लिया।

पारखी ने जिस तरह से परखना चाहा सामने वाला हर तरफ से खरा ही नही वरन् उस पारखी दृष्टि से एक कदम आगे निकला। गुरु गद्गद् होते रहते, उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन काल में पहली बार ऐसा विनीत, समर्पित, मेधावी, आस्था–निष्ठा से पूर्ण भरा युवक देखा था।

3.1.8 मुनि दीक्षा

ब्रह्मचारी विद्याधर अभी 22 वर्ष के भी नही हुए थे, पर उनकी अगाध गुरुनिष्ठा शास्त्राभ्यास और दृढ़व्रत ने गुरुदेव को अंदर तक प्रभावित किया। द्रोण ने अजफ्रन को, वीर ने गौतम को जो दिया वो सब ज्ञान गुरु ने विद्याधर को दिया। ज्ञान में विद्या था कि विद्या मे ज्ञान कौन जाने ? और वह दिन भी आ गया जब ज्ञान गुरु ने अपने सुयोग्य शिष्य को मुक्ति पथ का सर्वोत्कृष्ट साधन दिया। अजमेर, राजस्थान में उन्होंने विद्याधर को दीक्षा संस्कारों के साथ आषाढ़ सुदी पंचमी, विक्रम संवत 2025...तदनुसार **30 जून 1968** को **मुनि दीक्षा** दे दी और **वे विद्याधर से मुनि विद्यासागर हो गये।** बेटा विद्याधर धर्म की बलिहारी से अब माँ को आशीर्वाद देने योग्य बन गया। हजारों आँखों में प्रतिबिम्बित हुआ आगामी श्रमणधारा को दिशा बोध देने वाला एक युवा श्रमण मुनि विद्यासागर। भरे यौवन में इस युवा तपस्वी ने जिस मार्ग को चुना वह साधना मार्ग आग का दरिया, तलवार की तीक्ष्ण धार पर नग्न पाद चलने के समान था। यह बिंदु के सिंधु में विलय की यशस्वी प्रक्रिया थी।

आचार्य ज्ञानसागर जी के पारसमय व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर मुनि विद्यासागर जी का जीवन साधना अग्नि में तप–तप कर कुंदनमय हो गया। मुनि दीक्षा के बाद तो वे और भी अधिक निस्पृही, निर्लिप्त हो गये। एक के बाद एक लौकिक स्वाद की वस्तु का त्याग करते गए। इस वैराग्यमय दशा के चित्रण में श्री मूलचन्द्र लोहाड़िया जी का कथन है कि **"विषयोन्मुख वृत्ति, उद्दण्डता एवं उच्छृंखलता उत्पन्न करने वाली इस युवावस्था में वैराग्य एवं तपस्या का ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है।"**[3]

आचार्य ज्ञानसागर जी 80 वर्ष के हो चुके थे, देह जवाब दे रही थी। आयु कर्म समाप्त होने की आहट और मृत्यु के आगमन की निःशब्द पगचाप स्पष्ट सुनाई दे रही थी। अतः एक दिन मुनि विद्यासागर से आचार्य ज्ञानसागर ने शांत भाव से कहा–**"मेरी आयु का अन्त निकट है, मैं अपना आचार्य–पद तुम्हें देकर इस दायित्व से मुक्त होना चाहता हूँ।"**[4] मुनि विद्यासागर कदापि तैयार न थे। तब गुरुवर बोले–**"आज मैं तुमसे गुरु दक्षिणा मांगता हूँ। विद्यासागर मैं गुरु दक्षिणा में चाहता हूँ कि तुम सहर्ष आचार्य पद का गुरुत्तर दायित्व संभाल लो।"**[5] मुनि विद्यासागर निरुपाय हो गए। ये अत्यन्त संवेदनशील और निर्णायक क्षण थे जब गुरु दक्षिणा देना अनिवार्य हो गया।

यही सही शिष्यत्व की पहचान है। आखिर गहरी निष्ठा और आत्म समर्पण के साथ रख दिया शिष्य ने गुरु चरणों में अपना माथा।

3.1.9 आचार्य पद

श्रमण संस्कृति के ज्ञात इतिहास में शायद ऐसा अप्रतिम कार्य पहली बार ही हुआ होगा। पद–प्रतिष्ठा के आसक्ति भरे इस युग में ऐसे निस्पृही संत वमुश्किल से मिलते हैं। मगसिर कृष्ण द्वितीया संवत् 2029 तदनुसार **22 नवम्बर 1972** का वह अविस्मरणीय सौभाग्य राजस्थान प्रांत के नसीराबाद की माटी को मिला, जहाँ एक गुरु ने अपने ही शिष्य को गुरु के रूप में स्वीकृत कर श्रमण संस्कृति में अभिनव अध्याय जोड़ा। **लाखों–करोड़ों की श्रद्धालु आँखों ने देखा वह दृश्य–जब एक गुरु अपने सिंहासन से उतर कर और अपने शिष्य को निज सिंहासन पर आरूढ़ कर उनके चरणों में नमोस्तु कर रहे थे।** सब ओर सन्नाटा छा गया। अत्यन्त दृढ़ लेकिन विनम्र स्वरों में श्री ज्ञानसागर जी महाराज को सभी ने यह कहते सुना कि ''हे आचार्य महाराज मैं अपना अंतिम समय समीप जानकर आपके श्री चरणों में सल्लेखना की याचना करता हूँ, आप मुझ पर अनुग्रह करे।''[6] यह वीतरागता की पराकाष्ठा थी। अहं के विसर्जन और समर्पण की अद्‌भुत बेला थी। जिस शिष्य को आज तक हाथ पकड़कर लिखना–पढ़ना, बोलना–चलना सिखाया, आज उसे ही अपना आचार्य बना लिया। इतना ही नहीं, अपना शेष जीवन उनके सुदृढ़ हाथों में सौंप दिया। जिसने सुना और जिसने देखा उसका मन भर आया, आँखें सजल हो उठीं। एक बार फिर श्रमण धर्म और श्रमण संघ की जय जयकार हुई, उस दिन पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज की विनय देखते ही बनती थी। अपना सर्वस्व सौंपकर मानो पूर्ण निश्चिन्त हो गए थे।

एक वयोवृद्ध गुरु ने युवा शिष्य को अपना गुरु बनाकर उनकी देख–रेख में सल्लेखना की साधना प्रारंभ कर दी। मुनि विद्यासागर जी ने अपने गुरु की जो सेवा की उसके बारे में डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य का कथन है कि **''10 लाख रुपये की सम्पत्ति पाने वाला लड़का जितनी सेवा मॉ–बाप की नहीं कर सकता उतनी सेवा विद्यासागर जी ने गुरु ज्ञानसागरजी की तन्मयता और तत्परता से की है।''**[7]

गुरु महाराज भी सजग थे। अपने परिणामों की सम्हाल स्वयं करते। ध्यान, चिंतन, मनन में लीन रहते। इस तरह सल्लेखना अवाध रूप से चलती रही। एक दिन वह भी आया, जब सल्लेखना की साधना पूरी हुई। ज्येष्ठ वदी अमावस्या सम्वत् 2030 दिनांक 1 जून 1973 को ज्ञान सूर्य डूब गया।

आचार्य विद्यासागर की तपश्चर्या से परिवार इतना प्रभावित हुआ कि दोनों भाइयों और बहनों ने भी गृह त्यागकर जैन प्रस्थान में दीक्षा ग्रहण की। तदुपरांत **तो** माता–पिता भी मोक्षमार्ग में शरणागत हो गये। आचार्य श्री मात्र 22 वर्ष की उम्र में मुनि बन गये और 26 वर्ष के होते–होते वे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये। आचार्य पद से विभूषित होकर संघ संचालन का दायित्त्व संहालने लगे। सन्यास का सौंदर्य आचार्य विद्यासागर जी के रूप में मूर्ति–मान हो उठा है। ऐसा युवाचार्य जिनकी मुस्कराहट प्रवचन शैली मन को सहसा चुम्बक सा खींच लेती है। वे अपनी सरल, मृदु, सहज वाणी से शंकाओं का समाधान करते हैं। वस्तुतः तर्क से गहराई में जाने का उनका दृष्टिकोण उत्कृष्ट है, तर्क को वे व्यर्थ अवकाश नहीं देते, मात्र उतना हशिया देते, जहॉ तक तत्व दर्शन में उपकार होता है। उसके प्रति उनका आग्रह नहीं होता।

''आचार्य प्रवर ने इतनी कम उम्र में इतना ज्ञान अर्जित कर इस पंचम काल में जैन धर्म की गरिमा को बढ़ाकर सुमार्ग दिखाने में जो तत्परता दिखलायी है, वह अविस्मरणीय है। अपरिग्रह आपकी साधना का अंग है। आपकी मधुर वाणी का श्रवण करने से मानव का सुप्त हृदय भी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है। उनके प्रवचनों में अध्यात्म रस बरसता है। अनेकानेक विद्वतवर्ग, पंड़ित वर्ग आचार्य प्रवर की ज्ञान गरिमा से प्रभावित हो उनमें महावीर की झलक पाते है। उनका कहना है कि मैंने महावीर के दर्शन नहीं किये, किन्तु मैं जानता हूँ कि वे कैसे रहे होंगे, क्योंकि मैंने इनके प्रतिनिधि आचार्य विद्यासागर को, देखा है, उनके दर्शन कर श्री वीर प्रभु की कल्पना सहज ही कर लिया करता हूँ। लोगों को महावीर को देखना हो तो आचार्य श्री के दर्शन करें। उनकी समस्याओं का समाधान अपने आप हो जायेगा।''[8]

श्रमण परम्परा में आचार्य श्री विद्यासागर जी का स्थान शैल शिखर की तरह उतनायित हैं। वे विचारों के विश्वविद्यालय और आचार के विद्यापीठ हैं। इस युग के

कीर्तिमान तपस्वी कुन्दकुन्द समयुग का प्रभाव आचार्य श्री विद्यासागर जी में हैं। ऐसे तरुण तपस्वी महानाचार्य जिनकी अरहंत रूप मुद्रा का दर्शन मात्र ही प्रत्येक प्राणी के लिए अपूर्व आत्मिक शांति प्रदान करता है। उनकी मौन अवस्था रूप दर्शन भी वाक् वाणी का अमृतोपम उपदेश देती है।

''मैंने उन जैसे किसी के मुख से उपदेश नहीं सुने। एक–एक वाक्य में वैदुष्य झलकता है। अध्यात्मी कुंद–कुंद और दार्शनिक समंतभद्र का समंवय मैने इन्हीं के प्रवचनों में सुना है। मंत्र जाप करते समय ये मेरे मानस पटल पर विराजमान रहते है।''[9] डॉ. कैलाशचंद्र सिद्धांतशास्त्री

3.2 आचार्य प्रवर का कृतित्व :

आचार्य श्री बड़े दूरदर्शी संत है। वे वर्तमान में स्थिर रहकर सुदूर भविष्य में झांकनें का अद्‌भुत कौशल जानते हैं और यही विधि कौशल वह अपनी युग पीढ़ी को देना चाहते हैं। आचार्य प्रवर का पूरा अर्जन आज यही युग चेतना देता हुआ उन्हें गतिमान बनाये है। उनकी गति ही प्राण चेतना है और यही तपस्या की सिद्धि गन्तव्य है। जगत कल्याण के प्रति अकुलाहट ही उनका आत्मान्वेषण है। अपरिग्रह का संदेश देने वाले संत का यही परिग्रह है और यही हृदय कोष में करुणा की अक्षय निधि है।

पाश्चात्य जीवन के संसर्ग एवं भौतिक साधनों की अतिशयता ने भारतीय मानस को बदला ही नहीं, वरन् विकृत भी बना दिया है। बाहरी तड़क–भड़क और चमक–दमक को जीवन मान कर विलासमय जीवन जीने के पीछे आदमी आत्मकेन्द्रित, स्वार्थलिप्त और दोगला बन गया है। भारतीय संस्कृति की दुहाई देता हुआ वह असल में पाश्चात्य जीवन की बाह्य विकृतियों को अंगीकार कर चुका है। इसमें सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में विसंगतियॉ पैदा हो गई हैं। आचार्य जी ने स्थान–स्थान पर इन विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया है एवं अपने दिव्य चक्षु के माध्यम से भारतीय व्यवस्था के मुख्य क्षेत्र जिस पर देश निर्भर है – शिक्षा व चिकित्सा दोनों पर गहनता से विचार किया। शिक्षा और चिकित्सा जो मानव सेवा के प्रतिमान माने जाते हैं वही, दोनों क्षेत्र आज बाजारवाद की चपेट में घोर व्यवसायीकरण के पर्याय बने हुये हैं। निजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, मेडिकल और इंजीनियरिंग

संस्थाओं तथा निजी अस्पतालों को खोलने की बाढ़ पूरे देश में आई हुई है। शिक्षा और चिकित्सा आज मुनाफा कमाने के उद्योग और व्यवसाय बन गए है। शिक्षा और स्वास्थ्य के गिरते स्तर को देखकर आचार्य प्रवर का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उनके आशीर्वाद से रोगग्रस्त पीड़ित मानव की सेवार्थ चिकित्सालय की स्थापना हुई।

3.2.1 विभिन्न संस्थाएँ

- **ब्राह्मी विद्याश्रम** – महिला वर्ग में ज्ञान और चरित्र के उन्नयन हेतु 28 नवम्वर 1984 को जबलपुर व सागर (मध्यप्रदेश) में ब्राह्मी विद्याश्रम की स्थापना आचार्य प्रवर के आशीर्वाद से हुई। आश्रम में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किए बहने मोक्षमार्ग की साधना कर रही है।

- **भारतीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय शिक्षण संस्थान**– युवा देश की प्रशानिक सेवा में योगदान दे सकें, इस हेतु भारतीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय शिक्षण संस्थान की स्थापना सन् 1984 जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुई।

- **विद्यासागर शोध संस्थान की स्थापना**– विभिन्न विषयों में शोध हेतु विद्यासागर शोध संस्थान की स्थापना भी सन् 1984 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुई।

- **भाग्योदय तीर्थ** – रोगग्रस्त पीड़ित मानव की सेवार्थ भाग्योदय तीर्थ की स्थापना सन् 1993 में सागर (मध्यप्रदेश) में हुई। सेवा व दया के इस केंद्र में सभी प्रकार के रोगों का इलाज विभिन्न चिकित्सा पद्धति द्वारा किया जाता है। सेवा के क्षेत्र में अग्रणी भाग्योदय तीर्थ में चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों–एलोपैथी, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अनोखा संगम है। साथ ही चिकित्सा से जुड़े विभिन्न क्षेत्र जैसे नार्सिंग कालेज, फार्मेसी कालेज इसी परिसर में चल रहे है, यहाँ पर विभिन्न छात्र–छात्राएँ सेवाभाव व कर्तव्य परायणता की विशेष शिक्षा प्राप्त कर रहें है।

- **प्राकृतिक चिकित्सालय**– आचार्य प्रवर ने भारतीय पद्वति के चिकित्सा शास्त्र पर प्रकाश डाल कर धरती माता की विपुल सम्पदा, जो हमें आध्यात्मिक, मानसिक

एवं शारीरिक समृद्धि प्रदान करती है की ओर पुनः लौटने की प्रेरणा दी। भोजनादि के उचित समय जीवन की दैनिक गतिविधियों को किस प्रकार अनुशासित कर सात्त्विक जीवनयापन किया जाये इसका मंगलसूत्र भी आचार्य प्रवर ने समाज को दिया है। जो पूर्णतः वैज्ञानिक होने के साथ–साथ आध्यात्मिक भी है। जिसकी प्रयोगशाला–भाग्योदय तीर्थ में स्थित प्राकृतिक चिकित्सालय हैं। जिसकी स्थापना सन् 1998 में भाग्योदय तीर्थ, सागर (मध्यप्रदेश) में हुई। जहाँ पर एक ओर अंग्रेजी पद्वति से बडे–बडे डॉक्टरों द्वारा रोग का निदान किया जाता है, वहीं दूसरी ओर हवा, पानी, मिट्टी के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है। प्रकृति के करीब लाने का यह अनोखा प्रयास है। इस प्राकृतिक चिकित्सा आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किए डॉ. दीदी अपनी निःशुल्क सेवा देकर व्यक्ति की सोच को सकारात्मक रूप प्रदान कर रही है। मानव सेवा के रूप में आचार्य विद्यासागर जी का यह अनुपम प्रयास है।

- **फार्मेसी कॉलेज** – शुद्ध दवा व्यक्ति को प्राप्त हो सके के निमित्त से भाग्योदय तीर्थ सागर (मध्यप्रदेश) में सन् 2007 में फार्मेसी कॉलेज की स्थापना हुई।

- **नार्सिंग कॉलेज** – सेवाभावी उपचारक बनाने के उद्देश्य से भाग्योदय तीर्थ सागर (मध्यप्रदेश) में सन् 2008 में नर्सिग कॉलेज की स्थापना हुई। जहाँ विभिन्न स्थानों से आए विद्यार्थी को सेवाभाव के संस्कार विशेष रूप से दिए जाते हैं।

- **प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ** – परम्परागत संस्कार के साथ व्यक्ति, समाज और देश के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के उद्देश्य से प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ का निर्माण सन् 2006 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) में आचार्य प्रवर की प्रेरणा से हुआ। वे तपोवन में नहीं है, किन्तु तपोवन की उस परम्परा को युगानुकूल ढालकर आज पुनः प्रतिष्ठा दे रहे हैं। जो परम्परा गुरुकुल में पनपी थी किन्तु आज विलीन हो गयी है। गुरु का गुरुत्व, शिष्य का शिष्यत्व ही आज के तरूणाई को दिशा दे सकता है। यह प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ, इसी भाव को साकार रूप दे रहा है। शहर के कोलाहल से दूर प्राकृतिक वातावरण

में गुरुकुल पद्धति को अपनाते हुए है, जहाँ लौकिक शिक्षा के साथ–साथ आध्यात्मिक एवं चारित्रिक शिक्षा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये हुए योग्य शिक्षिकाओं के द्वारा प्रदान की जाती है। आचार्य प्रवर का मानना है कि यदि नई पौध को उत्थान की ओर ले जाना है तो स्वयं को व स्वयं के जीवन को संयमित करना होगा एवं अपने आपको नियंत्रित कर आदर्श जीवन प्रस्तुत करना होगा। नियंत्रण को वही स्वीकार करता है, जो धर्म से संलग्न होता है। धर्म मानव को कर्तव्य निभाना सिखाता है। ये शिक्षिकाएँ कर्तव्यनिष्ठा की प्रतिमूर्ति है। उनके आशीर्वाद से अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई जिसमें बालिकाओं के लिए स्थापित प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ मुख्य हैं। एक स्वस्थ शिक्षा योजना के क्रम में इसकी दूसरी शाखा की स्थापना सन् 2013 में प्रतिभास्थली ज्ञानोदय विद्यापीठ की स्थापना डोंगरगढ, (छत्तीसगढ) में हुई।

- **प्रतिभा प्रतीक्षा** – प्रतिभास्थली में शिक्षा के साथ संस्कार की शिक्षा प्रदान की जाती है। उनके संस्कार आगे तक बने रहें इस बात को ध्यान में रखते हुए इसके साथ और भी जो प्रतिभा संस्कारित होना चाहती हैं, उनके लिए आचार्य प्रवर ने सन् 2013 में इंदौर (मध्यप्रदेश) निर्मित प्रतिभा प्रतीक्षा बालिका छात्रावास को अपना आशीर्वाद दिया। प्रतिभा प्रतीक्षा में घर से दूर पढ़ने वाली बालिकाओं के लिए घर जैसा वातावरण, भोजन के साथ समुचित सुरक्षा की व्यवस्था को ध्यान में रखा गया है। आचार्य प्रवर का यह विचार बालिका की शिक्षा के साथ सुरक्षा एवं संस्कार की महत्ता को प्रदर्शित करता है।

- **प्रतिभा चयन–** बालिकाओं के संस्कार के साथ आचार्य प्रवर उन बालकों को भी संस्कारित करना चाहते हैं जिनके कंधों पर परिवार, समाज व देश का भार है। वे अपने इस कर्तव्य का निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ कर देश के विकास में अपना सहयोग प्रदान कर सके इस भावना से प्रतिभा चयन बालक छात्रावास की स्थापना सन् 2013 में इंदौर (मध्यप्रदेश) में आचार्य प्रवर के आशीर्वाद से हुई।

- **दयोदय तीर्थ** – जीव दया के प्रणेता की करुणा मात्र मानव तक सीमित नहीं रही, वरन् उस करुणा की छाँव मूक पशुओं पर भी बरसी और गौवंश के संरक्षण एवं संवर्द्धन का शंखनाद कर अहिंसा के लिए समाज को प्रेरित किया और आज दया के क्षेत्र में बूढी, अपंग, बेसहारा गायों की सेवा के उद्देश्य से देशभर में 100 से अधिक गौशालायें संचालित हैं। मध्यप्रदेश में 63, राजस्थान में 28, दिल्ली में 2, उत्तरप्रदेश में 2, छतीसगढ़ में 2, और गुजरात, तमिलनाडू, हरियाणा में 1–1 गौशालाएँ आपके आशीर्वाद से कार्यरत है। सेवा के निमित्त दयोदय की स्थापना सन् 2001 में जबलपुर में हुई। आपकी प्रेरणा से गरीब किसानों को रोजगार हेतु ''दयोदय जहाज'' बैलगाड़ी का वितरण गंजबसौदा एवं विदिशा में किया गया।

- **शांति–दुग्ध धारा**– यह गौ रक्षा एवं धन के सदुपयोग एवं बेरोजगारों को रोजगार के उद्देश्य से इस योजना का निर्माण आचार्य प्रवर के आशीर्वाद से हुआ जिससे लोगों को शुद्ध दूध, घी प्राप्त हो सकें।

- **पूरी–मैत्री**– माहिलाओं को स्वाश्रित बनाने के उद्देश्य से लघु–कुटीर उद्योग आचार्य प्रवर की प्रेरणा से सन् 2011 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) में प्रारंभ हुई। जहॉ महिलाएं अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के साथ आर्थिक सहयोग में सहभागी बन रही है। वही पूरी मैत्री के माध्यम से सुरक्षित व्यवसाय भी प्राप्त कर रही है।

3.2.2 तीर्थ स्थल –

निरंतर भेद से अभेद की ओर, द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ती आपकी साधना का स्पर्श पाकर अनेक प्राचीन तीर्थस्थल जीवंत हो उठे और आगामी पीढ़ी के लिए कुछ नए श्रद्धा स्थल भी आपके शुभाशीष से आकार ले रहे है साथ ही आपके निर्देशन में अनेक आध्यात्मिक साधना केंद्र भी बनते जा रहे है। **कुण्डलपुर, भाग्योदय, सर्वोदय, सिद्धोदय, दयोदय**, **बीनाबारा, रामटेक, दयोदय** आदि अनेक क्षेत्र व मंदिरों का निर्माण आपकी प्रेरणा का ही सुफल है।

3.2.3 चेतन कृतियाँ

अभी तक आपसे 87 मुनि, 172 आर्यिका, 20 ऐलक, 14 क्षुल्लक एवं 3 क्षुल्लिकाएँ दीक्षा पाकर मोक्षमार्ग पर अग्रसर हुए तथा सैकड़ों बालब्रह्मचारी युवक–युवतियाँ शिक्षा संस्कारों को प्राप्त कर भौतिक चकाचौंध से दूर आध्यात्मिक जीवन जी रहे हैं। आचार्य प्रवर का सारा संघ आचार–विचार का धनी है। उनका समूचा शिष्य–परिकर ज्ञान, ध्यान–साधना में अविरल निरत है। वीतरागता की प्राप्ति में उनका चिन्तन और मनन एक आदर्श सूत्र बन गया है। इस की पृष्ठभूमि में महर्षि आचार्य प्रवर विद्यासागर जी का महनीय योगदान है। भारतवर्ष के इतिहास में जैनाचार्यों में ऐसा कोई आचार्य नहीं हुआ, जिसने अल्पवय में ही सुशिक्षित शिष्य–शिष्याओं की इतनी लंबी कतार तैयार की हो। आपके संघ में डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोफेसर, आई.ए.एस. ऑफिसर के साथ–साथ देश–विदेश से शिक्षा प्राप्त युवक–युवतियॉ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत या दीक्षा लेकर साधनारत है। आपके शिष्य भारतीय संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास में जो योगदान कर रहे हैं उसकी सराहना युगों–युगों तक की जाएगी और ऐसे आचार्य की दया और देन को सदैव कालजयी माना जाएगा।

"स्वमेव साधना के जीवन्त प्रतिरूप आचार्य प्रवर संत श्री विद्यासागर जी मानवता की कल्याण–कामना के लिए तपस्यारत वह अक्षुण्ण विभूति हैं, जो दर्शन तथा लोक के तदात्मीकरण में लग्न हैं। उनका उद्‌देश्य मानव को जागृत कर उसे कर्म क्षेत्र की ओर उन्मुख करना है, ऐसे कर्मक्षेत्र की ओर जो मानवीयता के विकास की ओर हो तथा जड–चेतन को एक रूप देखने का पक्षपाती हो।"[10] डॉ. राजमणि शर्मा

3.2.4 आचार्य प्रवर का रचना संसार

आचार्य प्रवर के चिंतन, लेखन और प्रवचन में सरस्वती उतरती दिखाई देती हैं। उनका चिंतन जब शब्दों का आकार लेता है, वह एक अनूठी काव्य–शृंखला बन जाता है। ये यद्यपि मूलतः कन्नड भाषी हैं, पर मराठी, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, बंगला, और अंग्रेजी भाषाओं पर भी उनका समान प्रभुत्व है। इन भाषाओं में रचित उनका साहित्य उनकी प्रतिभा के सुगंधित प्रसून हैं, जिसकी महक सहृदयी काव्य जेताओं और आस्तावान् श्रोताओं में एक ऐसा साधारणीकरण उत्पन्न कर देता है जो उन पर अमिट

छाप छोड़े बिना विश्राम नहीं लेता। उनकी साहित्यिक चेतना को हम सरसरी निगाहों से यों देख सकते हैं–

- **संस्कृत रचनाएँ** – शारदा स्तुति, श्रमण–शतकम्, निंरजन–शतकम, भावना–शतकम्, परिषह–शतकम्, सुनीति–शतकम्, चेतन–चंद्रोदय।

- **हिन्दी काव्य** – मूकमाटी महाकाव्य, नर्मदा का नमर कंकर, डूबो मत लगाओ डूबकी, तोता क्यों रोता, चेतना के गहराव में।

- **स्तुति–सरोज**– आचार्य शांतिसागर स्तुति, आचार्य वीरसागर स्तुति, आचार्य शिवसागर स्तुति, ज्ञानसागर स्तुति, अध्यात्म भक्ति गीत।

- **हिन्दी शतक** – निजानुभव शतक, मुक्तक शतक, श्रमण शतक, निरंजन शतक, भावना शतक, परिषहजय शतक, सुनीति शतक, दोहा दोहन, सर्वोदय शतक, पूर्णोदय शतक, सर्वोदय शतक, जिनस्तुति शतक।

- **अनुवादित ग्रंथ** – कुंदकुंद का कुंदन, निजामृत पान, अष्ट पाहुड, नियमसार, वारस अणुवेख्या, पंचास्किाय, इष्टोपदेश, प्रवचनसार, समाधि सुधा शतक, नव भक्तियॉ, समन्तभद्र की भ्रद्रता, रयणमंजूषा, आत्ममीमांसा, द्रव्य संग्रह, गोम्मटेश अष्टक, योगसार, आप्त परीक्षा, जैन गीता, कल्याण मंदिर स्तोत्र, जिन स्तुति, गुणोदय, स्वरूप संबोधन।

- **प्रवचन साहित्य** – विभिन्न स्थानों पर दिये गये प्रवचन संग्रहों के संकलन रूप प्रवचन पर्व, प्रवचन पियुष, प्रवनामृत, पारिजात, प्रवचन पंचामृत, प्रवचन प्रदीप, पावन प्रवचन, प्रवचन प्रमेय, प्रवचनिका, प्रवचन सुरभि, तेरह सौ एक, धीवर का धी, सर्वोदय सार, सीप के मोती, विद्यावाणी, अकिंचित कर, चरण आचरण की ओर, कर विवेक से काम, धर्म देशना, कुण्डलपुर देशना, तपोवन देशना, आदर्शो के आदर्श, सिद्धोदय सार, कौन कहाँ तक साथ देगा, समागम, व्यामोह की परिकाष्ठा, भक्त का उत्सर्ग, आत्मानुभूति ही समयसार, मूर्त से अमूर्त की ओर।

वस्तुतः ये रचनायें कवि के बुद्धि वैभव और काव्य कौशल की सम्पूर्ण परिचायिकाएँ है। इन रचनाओं के कथात्मक एवं कलात्मकता का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. शारदा स्तुति – आचार्य प्रवर ने वाग्देवी सरस्वती की प्रशंसा में शारदा स्तुति लिखी। यह न्यायोचित ही है क्योंकि लेखकों की वाणी एवं लेखनी से सुंदर एवं प्रेषणीय भावों का व्यक्तिकरण भी तभी हो संभव है, जब सरस्वती की कृपा हो ऐसी विद्वानों की मान्यता है।

2. श्रमण–शतकम्' (संस्कृत 6 मई 1974) एंव 'श्रमण–शतक' (हिन्दी, 17 सितम्बर,1974) – श्रमण शतकम् का संदर्भ जैन श्रमण की आचार–प्रक्रिया तथा विचार–मंथन से है जो उसे मोक्ष–पथ प्राप्ति की ओर आगे बढाता है। श्रम के माध्यम से अपनी विकृतियों को विनष्ट करने वाला श्रमण कहलाता है। श्रमणों के संबोधनार्थ उन्होंने इस शतक में कहा है कि श्रमणों को बाहरी प्रवृति से हटकर अभ्यंतर चेतना को अपनी अनुभूति का विषय बनाना चाहिए। आत्मा और परमात्मा के अलावा समस्त विकल्पों को त्यागकर इंद्रिय विजयी एवं परिषह विजयी बनकर रत्नत्रय की सिद्धि कर अपने आत्मस्वरूप में रमना चाहिए।

3. 'भावना–शतकम्' (संस्कृत 11 मई 1975) एंव 'भावना–शतक' (हिन्दी, 10 अगस्त, 1975, अपरनाम 'तीर्थंकर ऐसे बने') – इस काव्य ग्रंथ में संसार का भीभत्स चित्रण करते हुए जनमानुष को संसार से निकलने के उपायों की शिक्षा पर विचार किया गया है। कवि की मान्यता है कि विनयशील व्यक्ति ही संसार से तिर सकता है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाली सोलह कारण भावनाओं – दर्शनविशुद्धि, विनय–सम्पन्नता, सुशीलता, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, दान, तप, साधुसमाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, अवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचन–वत्सलत्व का साहित्यिक शैली में विवेचन किया है। ये सभी भावनाएं एक दूसरे से सम्पृक्त है। जिन विचारों या जिस चिंतन से प्रभुत्व को उपलब्ध होने वाले व्यक्तित्व का सृजन होता है उन्हीं विचारों व भावनाओं का वर्णन शिक्षा के रूप में इस कृति में प्रस्तुत किया है।

भावना शतकम् अपने काव्य वैभव के कारण केवल धर्म ग्रंथ न रहकर उच्चकोटि का खण्ड काव्य बन गया है।

4. 'निरंजन–शतकम्' (संस्कृत ,23 मई, 1977) एंव 'निरंजन –शतक'(हिन्दी, 16 जून,1977) – जैसा इस ग्रंथ का नाम है वैसे ही अंजन से रहित शुद्ध आत्मतत्व का वर्णन इस ग्रंथ में है। इसमें कवि ने स्वयं के द्वारा स्वयं को उपदेश दिया है क्योंकि एक आदर्श आचार्य पर के कल्याण के साथ–साथ स्वयं के कल्याण में निहित रहते है। शुद्ध निरंजन स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कवि ने भगवान की भक्ति को निमित बनाया। संत कवि अपने अंग–अंग की निर्मलता भगवान की स्तुति से मानते हैं। हे पूज्य जिनराज! हे पूज्य गुरुदेव! आपके स्तवन से जिह्वा, नमस्कार से मस्तक, मार्ग में गमन करने से पैर, और दर्शन से दोनों नेत्र, इस प्रकार से मेरे सभी अंग निश्चय से निर्मल हो गये। संपूर्ण शतक एक खण्ड काव्य के रूप में है, जिसमें जिनेन्द्रदेव के स्वरूप एवं उनके गुणों की विवेचना की गई है।

5. 'परिषह–शतकम्' (संस्कृत 9 मार्च 1982) एवं 'परिषहजय–शतक' (हिन्दी 9 मार्च 1982 अपर नाम ज्ञानोदय) – यह शतकम् द्रुतविलम्बित छंद में निबद्ध एक आध्यात्मिक काव्य है। जिसमें बाइस परिषहों का यथार्थ वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। देव, मानव पशु या प्रकृति प्रदत्त शारीरिक तथा मानसिक बाधायें उपसर्ग कहलाती हैं और सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि बाधायें परिषह कहीं जाती हैं। इन परिषहों को सहने से साधक की साधुता निखरती है। जिस प्रकार कंचन अग्नि में तपकर निखरता है उसी प्रकार साधु परिषह रूपी अग्नि में तपकर खरा उतरता है। परिषहजय शतकम् श्रमण साधक के लिए एक अवलम्व के समान है, जिससे प्रेरणा एवं क्षमता प्राप्त होती है। संत कवि ने साधना जनित अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति इस काव्य के माध्यम से देकर साधना का निर्बाध मार्ग दर्शाया है। प्रस्तुत शतक विद्यार्थियों को विद्यार्जन के समय आने वाली कठिन परिस्थितियों में भी अविचल रहने की प्रेरणा देता है।

6. 'सुनीति–शतकम्' (संस्कृत,25 अप्रैल,1983) एंव 'सुनीति–शतक' (हिन्दी, 25 अप्रैल,1983) – सुनीति शतकम् उपजाति वृत्त में बंधा नीतियों का अनुपम संग्रह है, जो अपेक्षाकृत सरल, गंभीर और हृदयावर्जन है। इस काव्य में आध्यात्मिक नीतियों का समावेश है, जो साधक

को निरंतर नीति मार्ग पर आरूढ़ रहने की शिक्षा देता हैं। हृदय को आंदोलित तथा उमंगित करने वाला यह काव्य अत्यन्त सरस व शैक्षिक तत्वों से भरपूर अनुपम एवं प्रेरक है। संत कवि उसी को धन्य मानते हैं जो जितमना है, क्योंकि मन को जीते बिना इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। इन्द्रियों को जीते बिना परिषह को नहीं जीत सकते, परिषह को जीते बिना कर्मनिर्जरा नहीं कर सकते, कर्म निर्जरा बिना मुक्ति कैसे ? अतः मुक्ति पाने के लिए मन पर विजय आवश्यक है। सुनीति शतक में इसी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इसका अर्थ इतना सुबोध है कि अल्पज्ञानी भी इन सूक्तियों को हृदयंगम कर शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

7. चैतन्य चंद्रोदय – चित्त का भाव चैतन्य कहलाता है। समस्त प्राणियों को आहवान करने वाला होने से तथा मनोहर किरणों के समूह का प्रसार होने से वह चैतन्य चन्द्रमा के समान है। इस तरह चैतन्य चंद्रोदय इस कृति का सार्थक नाम है। इस लोक में एक सारभूत तत्व चैतन्य ही है। उस चैतन्य स्परूप की उपलब्धि ही प्रस्तुत कृति का उद्देश्य है। जिसमें अशुभपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का विषद वर्णन है। जिसकी टीका मुनि प्रणम्यसागर जी ने की है। यद्यपि यह ग्रंथकार की आध्यात्मिक व दार्शनिक कृति है, तथापि इसमें राष्ट्रीयता की शिक्षा का भी समावेश है।

8. जैन गीता (28 अगस्त 1976) – शांति संत विनोबा जी की सत्प्रेरणा से सन् 1974 में जिनागम की सर्वसम्मति से समणसुत्तं नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। विपुल जैन वाग्ड्मय का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन के लिए प्रत्येक शाखा–प्रशाखा पर अनेकानेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, किन्तु सम्यक जानकारी के लिए यह प्रतिनिधि ग्रंथ है। आचार्य प्रवर ने बड़ी मौलिकता के साथ बसंत तिलिका छन्द में समण सुत्तं का भावानुवाद जैन गीता के रूप में प्रस्तुत किया है।

जैन गीता में जैन धर्म दर्शन की सारभूत बातों को संक्षेप में क्रमशः अभिव्यक्त किया है। चार खण्डों में विभक्त 44 प्रकरण 756 गाथाओं में जैन धर्म, तत्व दर्शन एवं आचार मार्ग का सर्वांगीण परिचय संकलित हैं। प्रथम खण्ड में 15 प्रकरणों के अन्तर्गत 191 छंद हैं, जिसमें विषयभोग की असारता, दुःखमय तथा जन्मजरा मरण रूप संसार का कारण, विरक्ति भाव, रागद्वेष और उसका परिहार, क्रोध, मान, माया और लोभ रूप

कषायों के शमन हेतु क्षमा, मार्दव, सरलता और संतोष गुण का उदय साथ ही मोक्ष मार्ग में निर्भय विचरण करने की निर्देशना है। द्वितीय खण्ड में मोक्ष मार्ग के 18 उपशीर्षकों में 396 छंद हैं। इसमें मोक्षमार्ग, रत्नत्रय, श्रावक धर्म, मुनिधर्म, श्रमण व्रत उपवास चिंतन आदि की विवेचना है। तृतीय खण्ड में तत्व दर्शन के अंतर्गत तीन शीर्षकों में 72 छंद है इसमें जीव–अजीव आदि सात तत्वों, पाप–पुन्य आदि नौ पदार्थों, छः द्रव्यों का प्रतिपादन किया गया है। चतुर्थ खण्ड में स्याद्वाद में 8 शीर्षको में 97 पद्य समाविष्ट हैं। इसमें अनेकांत, प्रमाण–नय, सप्तभंगी जैसे दुरूह गूढ़ व गहन विषयों का हृदयग्राही विवेचन है। जैनागम समझने के लिए यह बेजोड़ कृति है। आचार्य प्रवर ने मूलग्रंथ की आत्मा को स्व संवेद्य किया है तथा कृति के माध्यम से भारतीय संस्कृति के गौरवान्वित अतीत को सराहा है।

9. कुन्दकुन्द का कुन्दन (समयसार–ग्रंथ का पद्यानुवाद) (26 अक्टूवर 1977) – आचार्य कुन्दकुन्द (ईसा की पहली सदी) का प्राकृत भाषा का यह एक महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। आचार्य प्रवर ने प्राकृत के महान ग्रंथ समयसार का बसंततिलका छंद में हिंदी पद्यानुवाद किया। जिसमें शुद्धात्म–तत्व का वर्णन है। पर से भिन्न स्व से अभिन्न शुद्धात्म का दर्शन ही इस कृति का मूल प्रतिपाद्य है। समयसार आगमों का आगम है। इसमें लाखों शास्त्रो का सार है। यह जैन शासन का स्तम्भ और साधकों के लिए यह कामधेनु कल्पवृक्ष है। इस ग्रंथ का अनुवाद करने में आचार्य प्रवर के समक्ष कुछ कठिनाइयाँ भी आयी हैं, जिनका उल्लेख उन्होंने इस ग्रंथ में किया है। ग्रंथ पर्याप्त गंभीर है अतः कई टीका–प्रटीकाओं का सहारा लेना पड़ा। कुन्दकुन्द स्वामी का संत कवि पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। उनके रचित ग्रंथों का स्वाध्याय करते समय अत्यन्त गद्‌गद् होते है। उनकी आंतरिक प्रसन्नता अंतस् शांति की झलक शांत रस के रूप में इस काव्यानुवाद में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

10. निजामृत पान/कलशागीत (29 अप्रैल,1978) – उक्त संग्रह संस्कृत की समयसार–कलश नामक कृति का पद्यानुवाद है। जिसकी रचना संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित आचार्य अमृतचन्द्र सूरि (विक्रम की दशवीं सदी) ने की। नाटक समयसार–कलश की भाषा और भाव कठिन होने के बावजूद आचार्य प्रवर ने उसका सफलतापूर्वक अनुवाद किया है। यह ग्रंथ पथ एवं पाथेय का कार्य करता हुआ ज्ञात से अज्ञात की

ओर ले जाता है। इस कृति का उद्देश्य जैन चिंतन में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली की गाँठें खोलना ताकि पाठक उसका भरपूर आस्वादन ले सके। इसमें कई अधिकार हैं – जीवाजीवाधिकार, कर्तृकर्माधिकार, पुण्यपापाधिकार, आस्रवाधिकार, संवराधिकार, निर्जराधिकार, बन्धाधिकार, मोक्षाधिकार, सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार, स्याद्वादाधिकार, तथा साध्यसाधकाधिकार। अन्ततः मंगलकामना के साथ यह भाषान्तर सम्पन्न हुआ है। आत्मा की अनुभूति करना व कराना इस कृति का परम लक्ष्य है।

11. द्रव्यसंग्रह (11जून,1978 एंव16 मई 1991) – आचार्य नेमीचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित द्रव्य संग्रह संज्ञक ग्रंथ में षड्द्रव्यों का संक्षिप्त विवरण प्राकृत भाषा की 58 गाथाओं के माध्यम से किया गया है। बसन्ततलिका छंद में अनूदित इस रचना में जैन दर्शन के विशेष विषय चर्चित हुए हैं– ज्ञान के भेद–प्रभेद, द्रव्य, पुद्गल, अस्तिकाय, कर्म, बन्ध, संवर तथा निर्जरा आदि तत्वों की चर्चा की गई है। सबका पर्यवसन मोक्ष है। सहृदय पाठकों के लिए जैन दर्शन के जीवादि तत्वों की सम्यक् शिक्षा देने वाली कृति है। आध्यात्मिक ग्रंथ होने पर भी ज्ञेय तत्व की प्रधानता से यह काव्य सरस रुचिकर एवं आत्म भावों को झंकृत करने वाला बन गया है।

12. अष्टपाहुड (31 अक्टूबर,1978) – प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड कवि एवं दार्शनिक आचार्य कुन्दकुन्द देव ईसा की प्रथम सदी के प्रमुख जैनाचार्य हैं। उनकी काव्य कृति अष्टपाहुड नैतिकता और सामाजिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में बहुश्रुत है। इसमें आठ पाहुड हैं– दर्शनपाहुड़, सूत्रपाहुड़, चारित्र पाहुड, बोधपाहुड़, भावपाहुड़, मोक्षपाहुड़, लिंग पाहुड, तथा शीलपाहुड़। शीर्षक के अनुरूप ही उनकी महत्ता और महिमा का गुणगान काव्य के रूप में कुन्दकुन्द देव ने किया है। उन्हीं की इस अद्वितीय कृति का आचार्य प्रवर ने बसंततिलका छंद में हिंदी पद्यानुवाद किया है। वर्तमान समय में मनुष्य के अंदर का शील तत्व समाप्त होता जा रहा है। आचार्य प्रवर ने शील की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, वह काफी सरल एवं हृदयग्राही है। इस कृति के माध्यम से संत कवि ने आधुनिक संत काव्य परम्परा के अनेक आयाम प्रस्तुत किए है। यह काव्यानुवाद संग्रह निश्चित ही अनेक संभावनाओं का सिंहद्वार है।

13. नियमसार (25 अगस्त,1979) – आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत प्राकृत भाषाबद्ध 'नियमसार' का यह भाषान्तरण पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत हुआ है। मोह और प्रमाद के निवारणार्थ यह पद्यमय अनुवाद आचार्य प्रवर द्वारा किया गया है। प्रवृत्ति एवं निवृत्ति तो प्राणिमात्र के लक्षण हैं, पर मोक्षमार्गी मानव को स्वेच्छाचार वर्जित है। उसे यदि स्वभाव में प्रतिष्ठित होना है तो नियम–संयम पूर्वक जिजीविषा की चरितार्थता के लिए चर्या बनानी पड़ेगी। इस तरह तमाम विधि–निषेधमय नियम इस कृति में बताये गए हैं।

14. द्वादशानुप्रेक्षा (1979) – अध्यात्म योगी कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्राकृत काव्य–ग्रंथ 'बारस–अणुवेक्खा' का हिंदी बसंततिलका छंद में पद्यानुवाद है। इस कृति के प्रस्तुतीकरण का ध्येय बारह भावनाएँ हैं– अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ तथा धर्म जिनका अनुप्रेक्षाओं का मार्मिक विवरण दिया गया है। जो व्यक्ति के लिए चिंतन की ओर प्रेरित कर शुचिता का मार्ग प्रशस्त करती है। ये बारह अनुप्रेक्षाएँ कवि को अत्यन्त प्रिय हैं। अपने शिष्यों को साधना पथ पर आगे बढ़ने के लिए ये सूत्र रूप में इन्हीं भावनाओं के चिन्तन की शिक्षा देते हैं। कवि के अनुसार इनके चिन्तन से वैराग्य वृद्धिंगत होता है तथा मुक्ति पथ पर अग्रसर होने हेतु दृढ़ता आती है।

15. समन्तभ्रद्र की भद्रता (29मार्च,1980) – महान दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र द्वारा विरचित 24 तीर्थंकरों की स्तुति स्वरूप् स्वयंभू स्तोत्र संस्कृत रचना है। जिसका पद्यानुवाद 'समन्तभद्र की भद्रता' संत कवि विद्यासागर जी ने ज्ञानोदय छन्द में करके श्रावकों के लिए तीर्थकरों की भक्ति का मार्ग सुगम कर दिया। यह स्तोत्र कवि को बहुत प्रिय है जिसका पाठ वे अत्यन्त तल्लीनता व भक्ति भाव से दिन में तीन बार करते हैं। प्रत्येक तीर्थकर की स्तुति के उपरान्त अनुवादक ने दो–दो दोहे स्व की ओर से जोड़कर कृति को और भी लालित्यपूर्ण बना दिया है। ये दोहे इतने लोकप्रिय हुए कि इन्हें जैन मंदिरों में अर्घ स्वरूप अंकित कर दिया गया है।

16. गुणोदय (26 अक्टूबर,1926) – यह कृति आचार्य गुणभद्राचार्य (ईसा की नवमी सदी) द्वारा प्रणीत संस्कृत भाषाबद्ध 'आत्मानुशासन' ग्रंथ का ज्ञानोदय छंद में पद्यानुवाद आचार्य प्रवर ने मूलग्रंथकर्ता के नामानुसार 'गुणोदय'–नाम से किया है। जो उनके

गुणोत्कर्ष को स्पष्ट करती है। इस ग्रंथ में 269 श्लोक हैं, जिसमें बताया गया है कि गुणवान व्यक्ति ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के उत्थान में सदैव तत्पर रहते हैं। मात्र बाहरी आवरण ओढे रहने से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती, उसके लिए आवश्यक रूप से भीतरी श्रृंगार की आवश्यकता होती है। यह काव्य संग्रह मुख्य रूप से हमें अनुशासन में रहने की शिक्षा देता है। अनुशासन जीवन की व्यवस्था है, जो इससे जुड़ा उसी का जीवन सार्थक है। जिसे अपनाकर विद्यार्थी अपना जीवन आनंदमय बना सकता है।

17. **रयण मंजूषा (4अप्रैल,1981)** – आचार्य समन्तभद्र प्रणीत संस्कृत में निबद्ध 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' की यह भाषान्तरित पद्यबद्ध कृति 'रयण मंजूषा' के नाम से ख्यात है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र आदि तीन अधिकारों में निबद्ध 150 श्लोक हैं। जिनका काव्यानुवाद संत कवि ने ज्ञानोदय छन्द में किया है। यह एक ऐसी मंजूषा है, जिसमें उपदेश के रत्न भरे हुए हैं। जिसके प्रथम अधिकार में आचार्य प्रवर कहते हैं कि धर्म का आचरण करने से श्वान भी देव हो जाता है और अधर्म अर्थात् पापाचरण करने से देव भी श्वान हो जाता है। इस संपूर्ण संसार में धर्म से श्रेष्ठ अन्य कोई वस्तु नहीं है। मानव को जो सुख–दुःख प्राप्त हो रहे हैं वो उसके कृत कर्म के कारण ही हो रहे हैं।

18. **आप्त मीमांसा (16 सितम्बर,1983)** – प्रकाण्ड विद्वान, न्यायवेत्ता, महान दार्शनिक के नाम से इतिहास में विख्यात आचार्य समन्तभद्र (ईसा की द्वितीय सदी) की रचना आप्त मीमांसा अपरनाम देवागम या देवागमस्तव का प्रथम हिन्दी पद्यानुवाद आचार्य प्रवर के द्वारा किया गया, जो आत्मार्थी जीवों के लिए कल्याणकारी है। इस मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण कृति में 114 कारिकाएँ हैं, जिसमें तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित तत्व व्यवस्था, स्याद्वाद्व आदि वर्ण विषय है। इसमें देव और पुरुषार्थ की चर्चा की गयी है। दार्शनिक समन्तभद्र स्वामी के भावों का अनुकरण करते हुए संत कवि विद्यासागर जी कहते हैं कि देव और पुरुषार्थ दोनों के मेल से ही कार्य की सिद्धि होती है, किसी एक से नहीं। यह पद्यानुवाद ग्रन्थ की अनेक ग्रन्थियों को खोलकर ग्रन्थ के भावों का साक्षात् निर्देशक है।

19. **इष्टोपदेश (20 जनवरी 1990)** – आचार्य पूज्यपाद ईसा की 5 वीं शताब्दी के प्रमुख संत कवि हैं। जिनकी कृति संस्कृत भाषाबद्ध 'इष्टोपदेश' का आचार्य प्रवर ने

भाषान्तरण (वसंत तिलका छन्द व ज्ञानोदय छन्द में पृथक–पृथक दो बार) किया है। यह कृति सांसारिक आपदाओं से दूर वैराग्यप्रद व चेतना को झकझोर देने वाली महत्त्वपूर्ण शिक्षाप्रद रचना है। संपूर्ण ग्रंथ शिवपथ के लिए शिक्षित करता है।

20. गोमटेश अष्टक (1971) – जैन दर्शन में पारंगत, प्राकृत भाषा के मर्मज्ञ, सुविख्यात उद्भट विद्वान, गोम्मटसार जैसे गंभीर सिद्धांत ग्रंथ के प्रणेता आचार्य नेमीचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती द्वारा विरचित गोम्मटेस धुदि का पद्यानुवाद ही 'गोमटेश अष्टक' के नाम से ख्यात है। प्रस्तुत कृति में शौरसेनी प्राकृत भाषा के आठ पद्यों द्वारा 'गोमटेश' बाहुबलि भगवान की स्तुति की गयी है। यद्यपि यह काव्य कृति लघु है, तथापि बड़ा ही मनोरम व भक्ति प्रवण, कमनीय भावबलि से युक्त है। इस कृति का पद्यानुवाद आचार्य प्रवर ने ज्ञानोदय छंद में किया है। माधुर्य और लालित्य से संयुक्त यह कृति कंठस्थ करने योग्य है।

21. कल्याण मंदिर स्तोत्र (1971) – आचार्य कुमुदचन्द्र (ईसा की छठवी सदीं) प्रणीत प्रस्तुत कृति मूलतः संस्कृत भाषा में निबद्ध है। आचार्य प्रवर ने उसका पद्यानुवाद 'कल्याण मंदिर' स्तोत्र नाम से प्रस्तुत किया है। इसमें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की भक्ति महिमा का गायन हुआ है, जिन्होंने कमठ का घोर उपसर्ग समतापूर्वक सहन किया था। इस कृति में कमठ का उपसर्ग, भगवान की समता व उस समता के फल का चित्रण है। प्रत्येक प्राणी कर्म के कारण दुःखी है लेकिन प्रभु के हृदय में बसते ही कर्म उसी तरह भाग जाते हैं, जिस तरह भुजंग को देखते ही चंदन वृक्ष से लिपटे सर्प। इसमें प्रतिकूल परिस्थिति में समता धारण करने की शिक्षा प्रदान की गयी है। वसंत तिलका छंद में अनुदित प्रस्तुत काव्य प्रभु भक्ति का अद्भुत संग्रह है।

22. नन्दीश्वर भक्ति (16 जून,1991) – ईसा की पॉचवीं शताब्दी में हुए सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री पूज्यपादस्वामी द्वारा संस्कृत में रचित नंदीश्वर–भक्ति का आचार्य प्रवर द्वारा 72 पदों में अनुदित यह संग्रह भक्ति–भावना का मौलिक दिग्दर्शन कराता है। अप्रकाशित किन्तु मानव हदय को प्रकाशित यह कृति, भक्त के द्वारा तन्मय भावों को आराध्य देव के चरणों में समर्पित प्रतीत होती है। ज्ञानोदय छंद में वर्णित निर्गुण, निराकार जिनालयों तथा जिनदेव का वर्णन हिन्दी साहित्य में अपनी विधा अवश्य

बनाएगा। अकाल्पनिक/अकृत्रिम मूर्तियों के प्रति कवि की साकार भावना वास्तविक एवं प्रत्यक्ष बिम्ब खडे कर देती है।

23. समाधि सुधा शतक (1971) – आचार्य पूज्यपाद स्वामी (ईसा की पाँचवीं शताब्दी) प्रणीत संस्कृत भाषाबद्ध 'समाधितंत्र' का आचार्य प्रवर के द्वारा 'समाधि सुधा शतक' पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस कृति में अधोगामी जीवों की भर्त्सना की गई है। जिन्होंने मिथ्यात्व के उदय में जड़ देह को ही आत्मा समझ रखा है। ऐसा मोहग्रस्त रागी अपने स्वभाव को कभी नहीं समझ सकता। विषयभोग को सभी संत व कवियों ने क्षणभंगुर व संसार का कारण माना, जिसे आचार्य प्रवर ने भी विष के समान मानकर इसे त्यागने की बात कहीं। इसे त्यागे बिना आत्मा का सच्चा आंनद प्राप्त नहीं हो सकता ।

24. योगसार (1971) – आचार्य प्रवर द्वारा अनुदित यह कृति छठी सदी के उत्तरार्द्ध में हुए मुनि योगीन्द्रदेव की अपभ्रंश भाषा में रचित प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ 'योगसार' का राष्ट्रभाषा में पद्यानुवाद है। आचार्य प्रवर की यह कृति प्रथक्रूप से अप्रकाशित होते हुए भी संतपरम्परा की विशिष्ट रचना है। इस कृति में लोक मूढ़ताओं बाह्य आडम्बर, सांसारिक असारता, वैराग्य, मोक्ष, शुद्ध तत्व की उपासना, लोकमंगल की भावना आदि का सुंदर चित्रण है। इसमें कवि का रहस्य दृष्टिगोचर होता है। रचयिता के अनुसार शिवसुख उसे ही मिलता है जो रागद्वेष को तजकर अपनी आत्मा में स्थिर होता है। पद्यानुवाद होते हुए भी कृति में मूल ग्रंथकर्ता से कहीं भी वैषम्य को प्राप्त नहीं होता। मूल भावों को आत्मसात करते हुए आचार्य प्रवर ने इसे मौलिकता प्रदान की है।

25. एकीभाव (1971) – ईसा की ग्यारहवीं सदी के प्रमुख आचार्य वादिराज कृत संस्कृत भाषाबद्ध इस कृति का 'मन्दाक्रान्ता छन्द' में पद्यबद्ध भाषान्तरण संतकवि द्वारा किया गया है। आचार्य प्रवर ने 27 पद्यों का यह पद्यानुवाद बडी रोचक शैली में किया है। इसमें कवि ने भव–बंधन से मुक्ति पाने के लिए पाठकों को स्तवन भाव का महत्त्व समझाया है, जो स्वर्ग सुख देने वाला है।

26. प्रवचन सार (1978) – आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध ग्रंथों में प्रवचनसार भी एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में तीन अधिकार हैं। ज्ञानतत्व प्रतिपादक

महाधिकार, ज्ञेयाधिकार और चारित्राधिकार। इनमें ज्ञानतत्व प्रतिपादक अधिकार में 101 गाथाएँ हैं। ज्ञेयाधिकार में 113 गाथाएँ तथा तृतीय चारित्राधिकार में 111 गाथाएँ हैं। संतकवि ने ग्रंथ का काव्यानुवाद वसंततिलका छंद में किया है। काव्यकला की दृष्टि से यह पद्यानुवाद युक्तियुक्त और रुचिकर है तथा साधना पथ पर चलने वाले साधकों के लिए आत्म रस का आस्वादन कराने वाला है।

27. **वारसाणुवेक्खा – (प्राकृत रचना)** – शिव पथ पथिक के लिए बारह भावनाओं का बड़ा महत्त्व है। इन भावनाओं के चिंतन से साधक संसार, शरीर, भोगों के स्वरूप को जानते हुए शीघ्र ही आत्मस्थ हो जाता है। बारह भावनाओं को सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध करने का श्रेय आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को जाता है। इसके उपरांत आचार्य कार्तिकेय ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा के नाम से विशाल ग्रंथ की, रचना की तदुपरान्त मेरी अपनी निजी दृष्टि से प्राकृत भाषा में द्वादश भावनाओं के बारे में लिखने का श्रेय महाकवि आचार्य प्रवर को ही जाता है।

28. **सिद्ध भक्ति** – पंच परमेष्ठियों में चार कक्षा के अधिकारी मनुष्य हैं, और एक कक्षा के अधिकारी हैं मुक्त आत्माएँ। ये ही मुक्त आत्माएँ सिद्ध कही जाती हैं। आठों प्रकार के कर्मों के क्षय से जब शरीर भी नहीं रहता तो उसे सिद्ध कहते हैं। सिद्ध भक्ति में इन्हीं के गुण–गानों का वर्णन किया गया है।

29. **चारित्र भक्ति** – इसमें रत्नत्रय में परिगणित चारित्र रूप रत्न की महिमा गाई गई है और उसकी सुगन्ध आचार में प्रस्फुटित हो, यह कामना व्यक्त की गई है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र की सम्मिलित कारणता मोक्ष के प्रति है। आचार्य प्रवर ने भी तमाम पारिभाषिक शब्दों का सांकेतिक प्रयोग किया है।

30. **योगि भक्ति** – सनातनी विद्या की अभिव्यक्ति की दो धाराएँ हैं– शब्द और प्रतिभा अभिव्यक्ति की दूसरी धारा श्रमणमार्ग की धारा है। तप एवं खेद के अर्थवाली दिवादि गण में पठित 'श्रम्' धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय होने पर 'श्रमण' शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है–तपन या तप करना। पर धारा विशेष में यह 'योगरूढ़' है– यों यौगिक तो है ही। तप ही इस धारा की पहचान है। यह तत्व न तो उस मात्रा में ब्राह्मण धारा में है

और न ही बौद्ध धारा में। योगिभक्ति में आचार्यश्री ने प्रबल तपोविधि का विवरण दिया है।

31. आचार्य भक्ति – पंच परमेष्ठी में तृतीय स्थान आचार्य का है। अध्यात्ममार्ग के पथिक को आचार्य की अँगुली, उनका हस्तावलम्ब अनिवार्य है और यह उनकी भक्ति से ही सम्भव है। आचार्य रूप श्री सद्गुरु स्वयं दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य– इन पाँच प्रकार के आचारों का पालन करता है और अन्य साधुओं से भी उसका पालन कराता है। इसमें आचार्य के छत्तीस गुण बताए गए हैं।

32. निर्वाण भक्ति –'महावीर' पदवी से विभूषित तीर्थंकर वर्धमान का निर्वाणान्त पंचकल्याणक अत्यन्त शोभन शब्दों से वर्णित है। इन तीर्थंकर के साथ कतिपय अन्य पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की निर्वाण भूमियाँ उनके चिन्हों के साथ वर्णित हैं।

33. नन्दीश्वर भक्ति – यह 16 जून 1991 को सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरिजी, बैतूल, मध्यप्रदेश में अनूदित हुई थी, जबकि शेष भक्तियाँ गुजरात प्रांतवर्ती श्री विघ्नहरी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिश्य क्षेत्र महुआ, सूरत, गुजरात में 22 सितम्बर, 1996 को अनूदित हुई थीं। नन्दीश्वर–यह अष्टम द्वीप है, जो नन्दीश्वर सागर से घिरा हुआ है। यह स्थान इतना रमणीय और प्रभावी है कि उसका वर्णन पढ़कर स्वयं आचार्य श्री प्रभावित हुए ही हैं और भी कितने मुनियों तथा साधकों को भी यहाँ से दिशा मिली है।

34. चैत्य भक्ति – आचार्य श्री ने बताया है कि जिनवर के चैत्य प्रणम्य हैं। ये किसी द्वारा निर्मित नहीं है अपितु स्वयम् बने हैं। इनकी संख्या अनगिन है। औरों के साथ आचार्य श्री की भी कामना है कि वे भी उन सब चैत्यों का भरतखण्ड में रहकर भी अर्चन–वन्दन–पूजन करते रहें, ताकि वीर–मरण हो, जिनपद की प्राप्ति हो और सामने सन्मतिलाभ हो।

35. शान्ति भक्ति – इस भक्ति में दुःख–दग्ध धरती पर जहाँ कषाय का भानु निरंतर आग उगल रहा हो, किसे शांति अभीष्ट न होगी ? तीर्थंकर शान्तिनाथ शीतल–छाया युक्त वह वटवृक्ष है जहाँ अविश्रान्त संसारी को विश्रान्ति मिलती है।

36. पंचमहागुरु भक्ति – इसमें अनंतः पंच परमेष्ठियों के प्रति उनके गुणगणों और अप्रतिम वैभव का स्मरण करते हुए आचार्य श्री कामना करते हैं–

कष्ट दूर हो, कर्मचूर हो, बोधिलाभ हो, सद्गति हो।
वीरमरण हो, जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ।।

इन विविधविध भक्तियों के अतिरिक्त आपके द्वारा आचार्य अकलंकदेव कृत 'स्वरूप–सम्बोधन' (1979) ग्रंथ का भी सरस अनुवाद किया गया है

37. मूकमाटी महाकाव्य – यह पुनर्जागरण चेतना से युक्त महाकाव्य है। जिसका सृजन भारतीय साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है। जिसमें माटी जैसी अकिंचन, पद–दलित और तुच्छ वस्तु को महाकाव्य बनाने की कल्पना ही नितांत अनोखी है। साथ ही माटी की तुच्छता में चरम भव्यता के दर्शन करके उसकी विशुद्धता के उपक्रम को मुक्ति की मंगल यात्रा के रूपक में ढालना और कविता को अध्यात्म के साथ अभेद की स्थिति में पहुँचाना है। यह दार्शनिक संत की आत्मा का संगीत है। जिसे चार खण्डों में 1 संकर नहीं, वर्ण–लाभ, 2 शब्द सो बोध नहीं, शब्द सो शोध नहीं 3 पुण्य का पालन, पाप–प्रक्षालन, 4 अग्नि की परीक्षा, चाँदी सी राख। यह महाकाव्य ही नही अपितु धर्म, दर्शन, अध्यात्म तथा चेतना का अभिनय–शास्त्र है। यह आधुनिक युग की मनुस्मृति और गीता है।

38. नर्मदा का नरम कंकर (1980) – आचार्य प्रवर की यह काव्य रचना शिक्षा जगत के लिए एक अनोखी देन है। जिसमें 44 कविताओं का संकलन है। परम्परा से आ रहे सिद्धांतों, विचारों को अपरिग्रही कवि ने मौलिक अनुभव के द्वारा नया विस्तार देते हुये शिक्षा को नई दिशा प्रदान की है। यह कृति आधुनिक शब्द विन्यासों, विविध भावाभिव्यंजनाओं एवं छंद–बंध, उन्मुक्त लय–धाराओं से आकृत है, व्यक्तित्व की सता को नहीं छूती वरन् सहज स्वंतत्र महासत्ता से आलिंगित परम पदार्थ की प्ररूपिका है और आध्यात्म रस से आद्योपान्त आपूरित है। वे कहते हैं कि यद्यपि अध्यात्म पिपासु, साक्षर यह युग है, तथापि सही दिशा बोध के अभाव में ही साध्य संवेदना की परिकल्पना कर बैठा हो, उसे यह विदित नहीं है कि ज्ञेय में सुख निहित नहीं है, वह

ज्ञान की भीतरी अनी से फूटता है। अतः अक्षर से अक्षरातीत, क्षरातीत, अंतरहित, अक्षर–अनंत परमपूज्य आत्मा को अनुभूत करना ही इस कृति का ध्येय हैं।

39. डूबो मत, लगाओ डुबकी (1984) – प्रस्तुत कृति वैज्ञानिक और आधुनिक सभ्यता से उपजी विद्रुपता के खिलाफ आत्म–चेतना का शंखनाद करती हुई आत्मिक क्रांति का आव्हान करती है। इस संग्रह में कुल 42 रचनाएँ हैं। यह कृति साधक कवि के अन्तःकरण की सोच और स्वानुभूति का प्रतिबिम्ब है। यह अत्यंत भावावेगमयी दार्शनिक रचना है। इस संग्रह में मनुष्य को सचेत किया है कि संसार डूब जाने के लिए नहीं, अपितु ज्ञान के सहारे इसमें डुबकी लगाकर, अज्ञान से मुक्त होकर ज्ञान की प्राप्ति के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। इस काव्य संग्रह की प्रत्येक कविता का एक अपना आनंद है, जिसकी पंक्ति–पंक्ति के पीछे एक रहस्य, एक संदेश समाहित है।

40. तोता क्यों रोता (1988) – इस संकलन में कुल 55 रचनाएँ हैं। इसमें मुख्य रूप से वर्तमान में असंतुष्ट और भविष्य की महत्त्वाकांक्षाओं से चिंतित मनुष्य का वर्णन किया है। सामाजिक भावना का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'तोता क्यों रोता' काव्य प्रतीकात्मक काव्य है। कृति के संबंध में डॉ. निजामउद्दीन का कथन सच ही प्रतीत होता है कि ''इस संग्रह की कविताएँ अपने भाव–संवेदन और शिल्प में अनुपम हैं। जीवन की विद्रूपताओं को रेखांकित करते हुए भी कवि ने दार्शनिकता और आध्यात्मिकता को उजागर किया है।''[11] निश्चित ही यह कृति अपनी मौलिकता के कारण अपनी प्रथम पहचान रखती है।

41. चेतना के गहराव में (1988) – आचार्य श्री विद्यासागर जी की काव्यकृति 'चेतना के गहराव में' आध्यात्मिक काव्य संकलन है। जो आधुनिक भौतिकवादी जड़ताओं में जकड़ी मानवजाति को एक नवीन जीवन दृष्टि प्रदान करती है। पांच खण्डों में विभक्त 77 कविताएँ कवि की स्वानुभूतियों एंव वैचारिक उर्जस्विता का प्रतिनिधित्व करती हैं। बिम्बों और प्रतीकों से भरा यह संकलन आचार्य प्रवर की गहन मौन साधना और निरंतर भ्रमण के अनुभव की जीवन्तता का प्रस्तुतीकरण है। निःसंदेह यह काव्य–संकलन साधक की साधना, कवि की कविता और आचार्य का आचार रूप तीनों की त्रिवेणी है। काव्य जगत

के लिए यह संकलन अपना एक अलग महत्त्व रखता है। आचार्य प्रवर की कविताओं का 'गहराव' स्वयं ही चेतना के गहराव तक पहुँचने का आमंत्रण देता प्रतीत होता है।

42. निजानुभव–शतक (7,सितम्बर,1973) – इस शतकम् में आचार्य प्रवर की सतत् साधनारत् अनुभूतियों की भव्य अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने मोह, रागद्वेष, संसार की विषमता का स्वरूप, क्रोध, मान, माया, निंदा, स्तुति, सम्यकत्व और मिथ्यात्व जैसे प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन किया है। धर्म और दर्शन जैसे दुरूह विषयों को वसंत तिलिका छंद में सरसता पूर्वक आबद्ध कर उसे रूचिकर एंव मार्मिक बनाया है। जिसमें कवि की अपनी अनुभूति व अभिव्यंजनाओं की अभिव्यक्ति सहज दिखाई देती है। इस शतक में भक्ति रस का ऐसा स्त्रोत प्रवाहमान है जो अशांत मन को शीतलता प्रदान करता है और मुक्ति पद की ओर उन्मुख करता है। मुमुक्षु जनों के लिए यह प्रकाश स्तम्भ है जिसकी ज्योति से साधना का काठिन्य भी सुगम दिखने लगता है।

43. मुक्तक–शतक (1971 में आलेखन प्रारम्भ) – मुक्तक वह रचना है जो पर से अनालिंगित रहकर अपने आप में पूर्ण और आस्वादकर होती है। संस्कृति के उन्नायक आचार्य श्री जी ने अपने साहित्य में विविध विषयों को समाहित किया है। इस शतक में कवि ने अपने माध्यम से जीव की प्रारम्भिक मिथ्यात्वपूर्ण सांसारिक अवस्था से शुद्ध–बुद्ध बनने तक की यात्रा का चित्रण किया है। यद्यपि यह चतुष्पदी शत क्षणिका है, किंतु मधुर रस भरी मनोहारी कलिका हैं। इसमें धरातल से आकाश छूने तक की यात्रा का विवरण है। जिस प्रकार रत्न लघु होते हुए भी अपनी गरिमा बता देते हैं, उसी प्रकार ये लघु कविताएँ भी अपने भाव एवं काव्य सौंदर्य से अपना गौरव गा देती हैं। यह शतक सुंदर, सरल और विद्यार्थियों के लिए हितकर है।

44. दोहा–दोहन (1986) – इस संग्रह में दोहे को सात शीर्षकों में विभक्त किया गया है। आमुख में श्री सुरेश सरल का कथन है कि ''जंगल में शेर की तरह और मनुष्यों में संतों की तरह दोहा भी कृतियों में अपनी छाप बनाए चलता है।''[12] मात्रिक छंद दोहा के माध्यम से संत कवि ने अपने आराध्य देव चौबीस तीर्थंकरों की वंदना की है, जिनमें लौकिक तड़प अलौकिकता के माध्यम से उभरती है। आचार्य प्रवर ने दोहे के माध्यम से जैन दर्शन के सर्वप्रिय सिंद्धात अनेकांत की प्रशंसा की कि उसने अपने कांतिमान प्रभाव से एकांत के ध्वांत को नष्ट कर दिया है तथा क्लांत विश्व को नितांत हर्षित एवं शांत बना दिया है।

अनेकांत की कान्ति से, हटा तिमिर एकांत।

नितांत हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शांत।।[13]

45. पूर्णोदय–शतक (19 सितम्बर,1994) – इस संकलन में आचार्य प्रवर द्वारा श्रावकों और मुमुक्षुओं के लिए तत्व की बातें, तरह–तरह के उपदेश तथा करणीय–अकरणीय का संदेश के साथ पाप–पुण्य दोनों से ऊपर उठने का संदेश निरूपण हुआ है जिससे साधकों में पूर्णता का उदय हो सके। उन्होंने स्वार्थ और परमार्थ परिणाम बताते हुए कहा कि कौरव रौरव में और पाण्डव शिवधाम में गए। इस तरह धर्मामृत की अजस्र भावधारा बहती हुई कृति पाठक के हृदय को झंकृत कर उठती है।

46. सर्वोदय–शतक (13 मई,1994) – इस शतक में आचार्य प्रवर ने 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'–की जगह सबजन सुखाय–सबजन हिताय का संकल्प कहीं अधिक सात्त्विक और सुखकर माना है। उनकी विचारणा है कि वे सबमें गुण ही गुण सदा खोजते रहें और अपने भीतर देखते रहें कि दाग कहाँ शेष रह गया है। जब तक दाग नहीं मिटता, तब तक गुणों के सद्भाव की सम्भावना कहाँ होगी ? जिस प्रकार मक्खी अपने पैरों को साफ करके उड़ती है, विद्यार्थियों को भी चाहिए कि वह दुगफ्रण को त्यागकर निर्बाध डुबकी लगाएँ। शिक्षा वह अन्वर्थ है जिसमें अनर्थ न मिला हो। मोक्ष भले न मिले, पर पाप के गड्ढे से सदा दूर रहें। इस तरह की शिक्षाप्रद बातों का उल्लेख किया गया है।

47. स्तुति सरोज – स्तुति सरोज की जानकारी के पूर्व गुरु परम्परा की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि उन्होंने गुरु परम्परानुसार अपना काव्य सृजन किया है। आचार्य श्री विद्यासागर के दीक्षा व शिक्षा गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी व उनके गुरु आचार्य शिवसागर जी, और उनके गुरु आचार्य वीर सागर जी और उनके गुरु आचार्य शान्तिसागर जी है।

संत कवि ने अपने साहित्य का शुभारम्भ इन्ही आचार्यों की स्तुतियों से किया है। **आचार्य श्री शांति सागर महाराज** की स्तुति बंसन्ततिलका छंद में 36 पद्यों द्वारा की है। इसी छंद में **वीरसागर महाराज** की स्तुति 42 छंदों में की है। **आचार्य शिवसागर महाराज** की स्तुति मंदाक्रान्ता के 22 छंदों द्वारा की है। **आचार्य श्री ज्ञानसागर स्तुति** में

20 पद्य हैं तथा यह सोलह मात्राओं का मात्रिक छंद है और प्रत्येक पद्य के अंत में मम प्रणाम तुम करो स्वीकार कहकर प्रणाम स्वीकारने की प्रार्थना की गई है।

इस खंण्ड के अंत में कुछ अन्य भक्ति गीत भी संकलित किये गये है। जिनके शीर्षक हैं – अब में मम मन्दिर में रहूँगा, परभव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर, मोक्षललना को जिया! कब वरेगा, बनना चाहता यदि शिवांगना पति, चेतन निज को जान जरा, भटकन तब तक भव में जारी, समाकित लाभ, अहो यदि सिद्ध शिला, ये सभी भजन कवि ने संभवः स्वगुरु की सल्लेखना काल में लिखे। आचार्य प्रवर को बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, कन्नड़, मराठी और प्राकृत भाषा का भी अच्छा अध्ययन है। बंगला और कन्नड़ में प्रतिनिधि रचना लिखी है।

48. प्रवचन–संग्रह– यह खण्ड गद्य शैली में निबद्ध है। ये सभी प्रवचन शैक्षिक तत्वो से भरपूर है।

- **'प्रवचनामृत' (1975)** – इस उपखण्ड में फिरोजाबाद, उत्तरप्रदेश में दिये गये प्रवचन सोलह कारण भावना भावनाओं पर आधारित हैं। इस संग्रह में प्रवचनों का सार दिया गया है। भावनाओं को कमशः इन नामों से प्रतिपादित किया है– साधु–समीचीन धर्म, निर्मल दृष्टि, विनयावनति, सुशीलता, निरंतर ज्ञानोपयोग, संवेग, त्यागवृत्ति, सत्–तप, साधु समाधि–सुधा–साधन, वैयावृत्य, अर्हत्भक्ति, आचार्यभक्ति, शिक्षा–गुरु स्तुति, भगवद्भारती भक्ति, विमल आवश्यक, धर्म–प्रभावना तथा वात्सल्य। जैन शास्त्र को हृदयंगम करने में ये प्रवचन नितान्त मनोरम और उपादेय हैं।

- **'गुरुवाणी' (1979)** – उनके इस उपखण्ड में जयपुर, राजस्थान में हुए प्रवचनों की साररूप कुल आठ गुरुवाणियाँ संकलित हैं, वे इस प्रकार हैं– आनंद का स्रोत, आत्मानुशासन, बह्मचर्य–चेतन का भोग, निजात्मरमण ही अहिंसा, मन–वच–काय की एकाग्रता सहित आत्मलीनता ही ध्यान है, मूर्त से अमूर्त की ओर, आत्मानुभूति ही समयसार है, परान्मुखता ही परिग्रह है और उन्नति की खुराक अचौर्यव्रत। यह प्रवचन संग्रह जनसाधारण के चिंतन को सही दिशा देने

तथा कायिक, मानसिक एवं वाचनिक उत्थान के लिए संबोधन स्वरूप है। गुरु की वाणी प्रकाश डालते हुए उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है।

- **'प्रवचन पारिजात' (1978)** – इस उपखण्ड में नैनागिरि के प्रथम चातुर्मास में सात–तत्वों पर सारगर्भित प्रवचन दिए थे। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वों का वर्णन इस संकलन में है। जो अत्यन्त सारगर्भित है। इस संग्रह की यह विषेशता है कि इसमें सिंद्धात को बिल्कुल मौलिक रूप में इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि उसमें से रस, संवेदन, अनुभूति पाठकों को प्राप्त होने लगती है, जैसे कि स्वयं उन्होंने अनुभूति की हो।

- **'प्रवचन पंचामृत' (1979)** – इस उपखण्ड में मदनगंज–किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान में प्रदत्त पाँच प्रवचन संकलित हैं– जन्मः आत्म–कल्याण का अवसर, तपः आत्म–शोधन का विज्ञान, ज्ञानः आत्म–उपलब्धि का सोपान, ज्ञान कल्याणक (आत्म–दर्शन का सोपान) मोक्षः संसार के पार। ये पचंकल्याणक महोत्सव के अवसर के संग्रहीत प्रवचन हैं। जैन दर्शन के लाक्षणिक शब्दों से संकुल होते हुए भी सरस एवं हृदयग्राही है, क्योंकि उनमें स्थान–स्थान पर लौकिक एवं व्यावहारिक उदाहरणों से रोचकता पिरोई गई है।

- **'प्रवचन प्रदीप' (1984)** – इसमें छः प्रवचन संकलित हैं –समाधिदिवस, रक्षाबन्धन, दर्शन–प्रदर्शन, व्यामोह की पराकाष्ठा, आदर्श सम्बन्ध, आत्मानुशासन, अंतिम समाधान, ज्ञान और अनुभूति, समीचीन साधना और मनावता। भारतीय–संस्कृति और सामाजिक विशिष्टताओं की वकालत करता हुआ यह संग्रह प्रवचनकार के निजी जीवन के अनुभवों का भंडार है।

- **'प्रवचन पर्व' (1985)** – इस संग्रह में जैन तीर्थक्षेत्र आहारजी में वर्षायोग के समय दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर धर्म के उत्तमक्षमादि दश अंगो पर जो प्रवचन दिए उन्हीं का संकलन हैं– पूर्व भूमिका, क्षमा धर्म, मार्दव धर्म, आर्जव धर्म, शौच धर्म, सत्य धर्म, संयम धर्म, तपधर्म, त्याग धर्म, आकिंचन्य धर्म, ब्रह्मचर्य धर्म। ये प्रवचन पर्युषण पर्व पर सम्पन्न हुए हैं जो मानवीय भावनाओं के परिष्कार या उदात्तीकरण का पर्व है। अधर्माचरण से उत्पन्न होने वाले तनाव से मुक्ति

दिलाना ही इसका उददेश्य है। प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व पर दस धर्मों का चिन्तन–मनन चलता है। जो आत्मा की खुराक है। जिनके चिन्तन से आत्महित में प्रवृत्ति होती है।

- **'पावन प्रवचन' (1983)** – इस उपखण्ड में तीन प्रवचन संकलित हैं–धर्मः आत्म–उत्थान का विज्ञान, अंतिम तीर्थंकर–भगवान महावीर और परमपुरुष–भगवान हनुमान। इस संग्रह में झारखण्ड और मध्यप्रदेश में दिए प्रवचनों का संग्रह है। इस संग्रह में आचार्य प्रवर की देशभक्ति, राष्ट्रीयता एवं महात्मा गांधी के प्रति प्रशंसात्मक रुचि दृष्टिगोचर होती है। कुरीति, देश या राजनीति विषयक प्रवचनों की आत्मा में सदा अध्यात्म ही छाया रहा।

- **'प्रवचन प्रमेय' (1986)** – इसमें जो दश प्रवचन संग्रहीत हैं, वे वास्तव में धार्मिक साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। पंचकल्याणक के सुअवसर पर दिए प्रवचनों का संग्रह है। जिसमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का स्वरूप बतलाते हुए उन्होंने आचार्य समन्तभद्र स्वामी को पर्याप्त उद्धृत किया है। आचार्य कुंद–कुंद की गाथाओं से भी भाव पुष्टि की गई है।

49. 'हाइकू' (1996) – आचार्य श्री ने कुछ क्षणिकाएँ भी लिखी हैं जो जापानी 'हाइकू' की छाया लिए हुए हैं। यह विधा लघुकाय होकर गहरी व्यंजना करती है। इसकी महत्ता व्यंजन क्षमता के अतिरेक में है। यथाः

'कली न खिली/अंगुली से समझो/योग्यता क्या है।'[14]

ध्यातव्य है कि निमित्त में भी उचित निमित्त के सानिध्य से द्रव्य परिणमन करता है। कली में खिलने की क्षमता के बाद भी सूर्य के निमित्त से ही खिलेगी अंगुली से नही। अभी तक आचार्य श्री के द्वारा ढाई सौ से अधिक 'हाइकू' लिखे जा चुके हैं। इस प्रकार आचार्य श्री की निर्झरिणी लोकहितार्थ निरन्तर सक्रिय है।

इसके अतिरिक्त कन्नड, बंगला, अंग्रेजी, प्राकृत भाषा में काव्य लिखा है। कितना विरला संयोग है कि एक कन्नड भाषी मराठी भाषा से परीक्षा उर्तीण करके हिन्दी भाषा की पुस्तकों का प्रणयन करें। यह उनके राष्ट्र भाषा के प्रति प्रेम दर्शाता है साथ ही

इससे सिद्ध होता है कि अपने भावों व विचारों की अभिव्यक्ति व्यक्ति राष्ट्र भाषा में अच्छे से व्यक्त कर सकते है।

''आचार्य श्री विद्यासागर जी आधुनिक राष्ट्रीय संत है तथा मर्मी कवि, सफल अनुवादक, शास्त्रज्ञ, विद्वान तथा चिंतक कवि है। उन्होंने अपने वाड्मय को हितमित वचनामृत से जनकल्याण में निरत कर राष्ट्रभाषा हिन्दी ही अपूर्व एवं ऐतिहासिक सेवा की है। अत्यन्त बहुमूल्य, चिरस्मरणीय, मानक तथा वंदनीय कृतियों के लिए वे अभिनंदनीय हैं।''[15] **पद्मश्री डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे**

सन्दर्भ

तृतीय अध्यायः आचार्य विद्यासागर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. सरल, सुरेश, (1996), विद्याधर से विद्यासागर, आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केंद्र,ब्यावर, राजस्थान, पृ.सं. 7
2. जैन, बारे लाल, (1992), हिन्दी–साहित्य की संत काव्य–परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन, शोध प्रबंध, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, पृ.सं. 51
3. पूर्वोक्त पृ.सं. 53
4. मुनि क्षमा सागर, (2001), आत्मान्वेषी, विद्या प्रकाश मंदिर, दिल्ली, पृ.सं. 57
5. पूर्वोक्त पृ.सं. 57
6. पूर्वोक्त पृ.सं. 59
7. पूर्वोक्त पृ.सं. 63
8. पूर्वोक्त पृ.सं. 67
9. मुनि अजित सागर, (2011), विद्याशति, प्रकाश शोध संस्थान, दिल्ली, पृ.सं. 69
10. पूर्वोक्त।
11. जैन, बारे लाल, (1992),हिन्दी–साहित्य की संत काव्य–परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन, शोध प्रबंध, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, पृ.सं. 45
12. पूर्वोक्त पृ.सं. 58
13. आचार्य विद्यासागर, (1984), दोहा दोहन, रजकण प्रकाशन, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 8
14. आचार्य विद्यासागर, हाइकू, (संकलन कर्त्री), पूज्य 105 आर्यिका अंतर्मति माता जी।
15. मुनि अजित सागर, (2011), विद्याशति, प्रकाश शोध संस्थान, दिल्ली, पृ.सं. 70